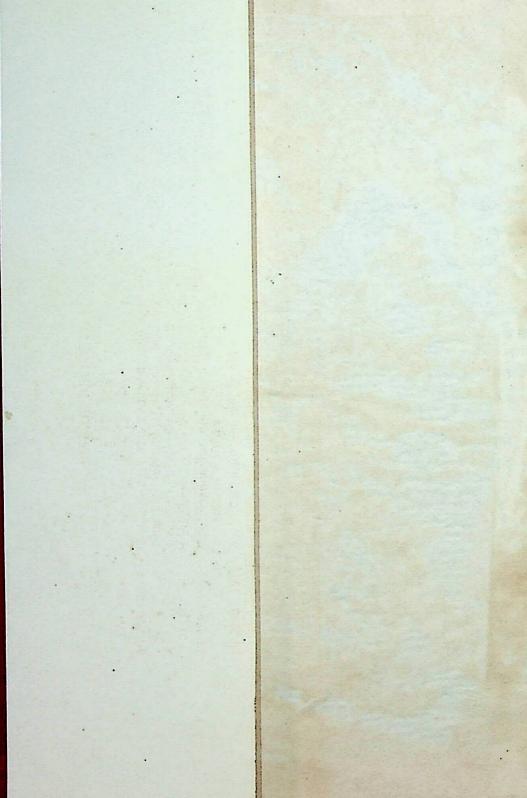
1p. 3.2

# खादिरगृह्यसूत्रम् अथवा इहिं।यणगृह्यसूत्रम्

हिन्दीव्याख्योपेतम्

ठाकुर उदयनारायण सिह



क्षा करता है। जिस ब हा हुआ या पा पुरस्ता है स



॥ श्री: ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

AND THE PARTY

रुद्रस्कन्दवृत्तिसहितम् खादिरगृह्यसूत्रम् अथवा द्राह्यायणगृह्यसूत्रम्

हिन्दीव्याख्योपेतस्

व्याख्याकार

ठाकुर उदयनारायण सिंह



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू० ए०, बंगलो रोड, जवाहरनगर दिल्ली ११०००७ चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३ म् यू.ए., बंगलो सेड, जवाहरनगर

पो. बा. नं. २११३

दिल्ली ११०००७

सर्वाधिकार सुरक्षित पुनर्मुद्रित संस्करण 2001 ई. मूल्य 125.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनः
के. ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. ११२९, बाराणसी २२१००१
दूरभाषः ३३३४३१

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो. बा. नं. १०६९, वाराणसी २२१००१

ब्रमाष : ३३०४०४

मुद्रक श्रीजी मुद्रणालय बाराणसी

# THE VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA

56



# KHĀDIRAGŖHYA SŪTRAM DRĀHYAYAŅA GŖHYA SŪTRAM

WITH THE
COMMENTARY OF
RUDRASKANDA

&

Hindi Commentary

By

Thakur Udaya Narain Singh



CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Bungalow Road, Jawaharnagar
DELHI 110007 -

# CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

38 U.A. Bungalow Road, Jawaharnagar Post Box No. 2113 DELHI 110007

KHADIRAGRHYA SUTRAM

Also can be had of

## CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

K-37/117, Gopal Mandir Lane Post Box No. 1129 VARANASI 221001

Telephone: 333431



#### CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

(Oriental Publishers & Distributors)

CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)

Post Box No. 1069 VARANASI 221001

Telephone: 330404

### क्ष प्रस्ताव क्ष

--:\*:---

इस समय भारत में सब ज्रोर से सत्य सनातन वैदिक धर्म पर श्राक्रमण होरहे हैं जिससे हम लोगों के धर्मसे श्रद्धा प्रेम हटता जाता है। इसका मुख्य कारण धर्म की शिचा का अभाव और अपने धर्म को ठीक २ न जानना आदि है। अतएव हम लोगों को चाहिये कि वैदिक धर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त करें इसका साधन भारत के प्राचीन श्रीत, गृह्य, धर्म सूत्रादि प्रन्थों में उपदिष्ट कर्त्तब्यों को सममें वृमें। वेद ४ हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चारों वेदों की ११३१ वा ११३७ शाखायें हैं। जिनमें से ऋग्वेदकी २१ कृष्ण यजुर्वेद की पद शुक्त यजुर्वेद की १४, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ६ शाखायें हैं। प्रत्येक शाखा की मन्त्र संहिता को पढ़ने पढ़ाने के लिये वेदों के छः २ अङ्ग (शिचा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ) हैं। इन छः अङ्गों में से कल्प नामक अङ्ग के श्रीत तथा गृह्य त्रादि भेद हैं। गृह्यसूत्रों में स्मार्त्तधम्मों का विधान होने से इस समय कर्म में प्रवृत्ति कराने के लिये गृह्य तथा धर्म सूत्रों का प्रकाशन करना परम आवश्यक है। अत्र व हम ने पहिले गृह्य सूत्रों का ही प्रकाशन आरम्भ किया है।

यह गृह्यसूत्र सामवेद की शाखाओं में से है। गृह्यसूत्रों में प्रायः एक से ही कर्त्तव्य संस्कार आदि का उपदेश है, परन्तु शाखा मेद से कुछ मेद भी अनिवार्य है। गृह्यसूत्रों में कुछ ऐसे भी धर्म उपदिष्ट हैं जो काल भेद अधिकारी आदि भेद से इस समय कर्ता व्य नहीं है।

जिस देशकाल में श्रीर जिस रीति से जो काम जिसके लिये कर्त्तव्य कहा है, वह उसी देश काल में, उसी रीति से किया हुआ, उसी मनुष्य के लिये उचित धर्महै। उसी को श्रन्य प्रकार से करने पर

वहीं अधर्म हो जाता है। जैसे रोना सर्वत्र बुरा समका जाता है, परन्तु वेद प्रमाणानुसार पिता के घर से पति गृह को जातो हुई कन्या का रोना अच्छा माना जाता है। गाली देना सर्वत्र बुरा काम है, पर विवाह में स्त्रियाँ ऋौर पुरुष गालियों को शुभ मानते हैं। इसी के अतुसार यज्ञादि में पशुत्रों का त्रालम्भन भी पूर्वकाल में बरा नहीं माना जाता था, परन्तु लोक रीति से अपना मांस बढ़ाने के लिये शाख-विरुद्ध पशु हिंसा अत्यन्त बुरी मानी जाती थी। जब ऋषियों ने ऐसा विकराल समय आते देखा तब पहिले से ही (लोकविक्रप्टमेव च) लिखगये कि जो धम्मे जिस समय लोक में बुरा सममा जावे उस समय वह कर्तन्य नहीं है,इसलिये "पश्वालम्भ" कर्म इस समय कर्त्तव्य नहीं है। इस कारेण ऐसे विचार इन प्रन्थों में देखकर उद्वेग या संकोच नहीं करना चाहिये। सब काम देश कालों में सबके लिये जब कदापि हो ही नहीं सकते तो इन्हीं अन्थों का सब लेख हमारे अनुकूल कैसे हो जावेगा ? जैसे शीतकाल में खसखस की टड़ी व्यर्थ होने पर भी गर्मी आने पर स्वयं सार्थक हो जाती है या जैसे गर्मी के दिनों में या गर्म देश में शीत के वस्त्र बोमा मात्र व्यर्थ प्रतीत होने पर भी फिर शीत का देश या काल आने पर सार्थक उपकारी हो जाते हैं। तथा जैसे पंसारी की दूकान में रक्खा हुआ विष कभी किसी अधिकारी के लिये अमृत के समान उपकारो हो जाता, इसलिये उससे द्वेष घृणा-करना भूल है उसी प्रकार इन प्रन्थों के पशु सज्ञपनादि विषयों से द्वेष या घुणा नहीं करना चाहिये।

> <sub>निवेदकः</sub>— ठांकुर उदयनारायण सिंह.



e the many

# विषय-सूची।

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
गृह्य कर्मों के उद्देश	8	पुंसवन	3%
सामान्यतः कर्मकाल	ą	सीमन्तोन्नयन	६२
यज्ञोपवीत	8	निष्क्रमण	६३
श्राचमन	×	सोष्यन्ती होम	६४
कुशासन	v	जात कर्म	६ः
दिशास्त्रों का नियम	v	नामकर्ण	६६
होम का स्थान	v	चूड़ा करण	90
स्नान	o	<b>उ</b> पनयन	<b>UX</b>
हाथों के नियम	5	केशान्त (गोदानिक)	<b>प</b> ३
मन्त्रों के नियम	3-7	ब्रह्मचारि कृत्य	디
पाक यज्ञ	3	स्तान ( आसवन )	K3
नहा <u>ः</u>	3	स्नातक कृत्य	٤٠٠ .
<del>ड</del> पलेपनादि	१२	पुष्टिकाम का उपदेश	१०२.
होम के पूर्व कृत्य	१२-१७	<b>उपाकर्म</b>	१०५
विवाह	१८	श्रनध्याय	११०
गर्भाषान	३६ं	श्राश्वयुजी कर्म	११३
गृह्य का अर्थ	३७	<b>आप्रहाय</b> ण	११४
श्रौपासन	३८	<b>अ</b> ष्टका	११७
वैश्वदेव	88	<b>अन्वष्टका</b>	१२४
दर्श श्रीर पौर्णमास	80		१३३
श्राग्नेय स्थाली पाक	४६	मधुपर्क के योग्य व्यक्ति	

# I TER-BUEL

	and the shirt top E.
	A SERVICE CONTRACTOR
	LOTTE DE CALLE PER À
	A STATE OF THE PROPERTY.
	Secret in produce from:
	SE SE SENSENDE
	· · · · · · · · · · · · · · · · · · ·
Manual Property	A PER AND A STEEL STEEL
Man or LEGISE LEGIS	\$ - 10 E E E E E
	SECTION AND ADDRESS OF THE PARTY OF THE PART
	MI LE S. C. PRINCE
Street Brief	
	वांस्त्र . स्वांस
Wil a thereof	

# खादिरगृह्यसूत्रम्।

# रुद्रस्कन्दीयवृत्तिसहितम्।

# अयाती युवा कर्माणि ॥ १ ॥

अथ जनन्तरम् । कस्माद्तन्तरम् । दिव सविकः' इत्यादिमहत्रः षच्छाखाध्ययनात् । यतोऽनधीतवेदस्य मन्त्रापरिज्ञानात् वद्यमार्गेषु काक्येंबु कर्मानुष्ठानयोग्यतया अतिपत्तुंमशक्यं, अतस्तद्नन्तरमिति गरूपते । ननु—मन्त्रमात्राध्यनाद्पिं शक्यं प्रतिपत्तुम् । सत्यम्÷न्यदि मन्त्रंमात्राध्ययने विधिरस्यात् स्यादेवं,कुत्स्नवेदाध्ययनः एव विधिप्रवृत्तः। विष्यमावें को दोषः? इच्छानिवन्धनमध्ययनं स्यात् । तथा सत्यध्ययज्ञस्य पुरुषप्रतिपत्त्युपायत्वीत् तस्याश्चः तत्साध्यपुरुषार्थपरामर्शापेत्रत्वात् संन्त्राणां चातीन्द्रियपुरुषार्थसाधनकारोपकारिप्रकाशनशक्तिसद्भाविकः श्रयप्रमाणाभावेन तद्विवज्ञाया श्रसम्भवात् श्रवश्यमन्यविवज्ञया स्रवितव्यम् । श्रंन्यविवज्ञया चोचरितस्याप्रामाय्यमाद्वर्मीमांस्काः । म्नन्थगौरवमयावस्मामिर्न लिख्यते । अप्रमाणभूतस्य च साधनत्वायोन गात् न तावन्मात्राध्ययनस्य वृत्तत्वम् । वैधे त्वध्ययने 'स्वाध्यायोऽध्ये-तन्यः इत्यक्रप्रधानत्वात्रिर्देशस्य संस्क्रियमाणाचरद्वारेण च पुरुषार्थाः वबोवनकपप्रयोजनसिद्धिसम्भवात् स्वाध्यायाध्ययनस्य ज्ञानसंपादनद्वारा प्रामाएयम । वैधं त्वध्ययनं नियतक्रमत्वात् न तावन्मात्रस्य संभवति । एव्मपि किमिति न तत्परस्य वृत्तत्वम् । एकत्वाद्विधेरन्तरास्थितौ विधिविरोधात् । न हि प्रधानभूतामध्ययनिक्रयामपरिस्साप्य तद्पे-चिते व्यापासन्तरे प्रवृत्तिः ॥

श्रतशराद्वी वह्रयमाणं पति वृत्तस्याध्ययनस्य पर्यवसानलक्षां देतुत्वमाह् । श्रध्ययनविधिहिं श्रर्थावबोधपर्यन्तोऽनुष्ठानयोग्यमवकोधं विना न पर्यवस्यित । 'देव सवितः प्रसुव' इत्यादिमन्त्रोत्पन्नश्च श्रवबोधो न गृह्यशास्त्रोपदेशं विनाऽनुष्ठानयोग्यो भवति । श्रत एप सूत्रार्थः—श्रध्ययनान्तरं तत्पर्यवसानादेव हेतोः गृह्याणि कर्माण्युपदे-स्याम इति ॥

श्रीपासनाख्योऽप्रिगृंद्धः 'यस्मित्रप्रौ पाणि गृह्वीयात् स गृह्यः' इति वचनात्। तत्साध्यानि कर्माणि लच्चणया गृह्याणीत्याह । श्रत श्रीपासनहोमादिषु गृह्याप्रिमत एवाधिकार इत्युक्तं भवति । श्राहत्य विहितं वर्जियत्वा यथा 'पुनर्मामैतु' इति ब्रह्मचारिएः । चौलादीनि बालसंस्काराथर्तया तच्छेपत्वेन तद्यपि बोध्यन्ते, तथाऽपि 'पुत्रं संस्कु-र्यात्' इत्येवमादिवचनात् पितुरपि तानि फ्रत्यान्येव । स्वक्रत्यानि च सर्वाण्यग्निसाध्यान्यस्मिन्नेवामी कार्याणि । श्रस्य सर्वसाधारणस्वेनो-स्पन्नत्वात् ऋग्न्यन्तरात्तेपे प्रमाणान्तराभावाच। वालकृत्यमपि प्रसङ्ग-सिद्धत्वान्नाग्न्यन्तरमाचिपति । यदा तु सर्वाधानेन पितुरप्यग्न्यभाव-स्तदा बालकृत्येनाऽऽचिष्यते लौकिकाग्रिस्सर्वहोमेषु समाचारसिद्धत्वात् ह्नौकिकस्य । पिताऽपि तरिमन्नेवाग्नौ संस्कुर्यात् विद्यमाने गृह्ये **डपात्तस्य विद्यमानत्वादुपादानन्नमः । श्रत्र परसंस्कारार्थान्येकदेशं** प्रशीय तरिमन्नेक कार्याणि । समाप्तेषु तस्य लौकिकत्वमित्यसमद्य-लब्धदेशे समाचारः । यद्येवमेव समाचारस्सार्वत्रिकस्स्यात तथैव श्रुतिच ल्पनया प्रमार्ग स्यात् । श्रथ तु देशान्तरे विगानं स्यात्, कृत्सन एव परार्थान्यपि स्युः, नाष्यग्नेरन्ते लौकिकत्वम् । यदा त्वनिमः पिता भार्यामरणादिना यदि शास्त्रान्तरेष्वनग्नेस्संस्कारप्रतिषेधो विद्यते तदाऽन्येन कार्येत्। अथ तु न विद्यते स्वयमेव लौकिकेऽग्नौ कुर्यात्। नतु - अन्यदीयेऽप्रावन्यः दिमिति न दरोति । आहवनीयादिवत् पुरुषविशेषं प्रति नियत्त्वात् । यस्य यो गृह्यः स तस्यैव संरकारंयोग्यः ॥

गृद्धाणीति प्राप्ते छान्दसो लुक्कृतः छन्द्रस्तुल्यत्वमस्य शास्त्रस्य गमयितुम् । तुल्यत्वं च पेद्मृत्तत्वेन मन्वादिवद्तीन्द्रियार्थे प्रामाण्यात् वेद्मृत्तत्वाव । वेदमृत्तेषु स्मृतिशास्त्रोषु वेदाङ्गेषु च यद्यदस्य शास्त्रस्यापे-चितं विद्यते तस्य तस्य सङ्ग्रहस्सिद्धो भवति, सर्वेषाम्भ्ययनविष्या- चिप्ततया एकविक्वानविषयत्वात् । अपेचाऽभावे त्वविरोधिनामपि न समुखयः, परामर्शहेत्वभावेन वाक्यार्थस्य पर्यवसानात् । गृह्याणीति-सिद्धे कर्माणीतिवचनमग्न्यन्तरसाध्यस्यान्वष्टक्यादेरनिप्रसाध्यस्य च सङ्ग्रहार्थप् । तस्य च प्रयोजनं वच्यमाणायाः परिभाषायाः साधारणत्वं सूचितुम् । अत एष वाक्यार्थः—गृह्याएयगृह्याणि च कर्माण्युपदेच्याम इति । गृह्यसाहचर्यादगृह्याएयप्यौपासनवत एवेतिकेचित् ॥ १ ॥

भा०-अव श्रौत कंम्म दर्श पौर्णमास आदि के कहने परचात् सदाचार सम्बन्धी उपनयनादि गृह्य (स्मार्त) कम्मों को कहेंगे। यह अधिकार सूत्र है-यहाँ से लेकर इस अन्य की समाप्ति तक जो कुछ कहा जायगा, उसको गृह्य कम्मों के विषय में जानना।। १।।

# उदगयनपूर्वपक्षपुरायाहेषु प्रागावर्तनादहः कालोऽनादेशे ॥२॥

यरिमन् च्यो मकरं गच्छति सूर्यः ततः प्रशृति परमासां उदग-यनम् । यस्मिन् चर्णे सूर्याचन्द्रमसौ सह वसतः तत ऊर्ध्वं यश्मिन् च्चां तयोरेव परमो विप्रकर्षः ततः प्राक्पूर्वपद्यः । ज्योतिरशास्त्रे कर्मयोग्यं यदहरुक्तं तत्पुर्यमहः। तेषां द्वन्द्वसमासः। अन्वये तेषामि-तरेतरयोगमाह विभक्तिः। अतो येषु कर्मसु समुचितानामन्वयः सम्भ-वृति तेषु समुचितानामेवाङ्गत्वं, येष्वसम्भवस्तेषु यथासम्भवं द्वयोरेकस्य वाऽन्वयः। नतु-सक्चदुचरितस्य कथमनेकघाऽन्वयः । सर्वकर्मणामधि-कृतत्वादर्थादावर्तते पदं, इतरेतरयोगविवस्तया च । समुचयसम्भवेऽपि ज्ञ्योतिश्शारत्रे निषिद्धमहरतद्वर्जनीयं उदगयनपूर्वपत्तावनादृत्या पि दोषहेतुत्वात् । मध्यंदिनादूर्ध्वमहरावर्तनिमत्याहुः । ततः प्राग्प्रहुणं वकाभावेऽप्यावृत्तिरस्ति ऋह इति विशिनष्टि । ननु-प्रातराहुति हुत्वा ह्विर्निर्व पेदित्यनेनेव सिद्धम् । न सिद्ध चिति पूर्वकालनिषेधपरत्वात्तस्य । श्रपि च 'सर्वमहः प्रातराहुतेस्स्थामम्' इतिवचनात् श्रपराह्रोऽपि स्यात्। काल इति यथाऽन्ये दर्शाद्यः काला श्रिधिकारहेतवः तथाऽयमप्युक्तः कालोऽधिकारंहेतुर्नाङ्गभात्रमिति गमयितुम्। अतोऽन्यकालेकतमकतमेन न विगुएंमात्रम् । विशेषादेशस्य बलीयस्त्वेसिद्धे श्रनादेश इति शास्त्रा- न्तरादेशस्य सङ्ग्रह्णार्थम् । तत्र विरुद्धानां विकेल्पः । यथा विवाहे सर्वकालत्वं, उपनयने च पद्धमवर्णीद् । श्रविरुद्धानां समुच्चयो यथोपनयने वसन्तादि, सर्वेषु च मुहूर्तादि । एवं सर्वत्र ॥ २ ॥

इस प्रनथ में जहां २ समय की कोई व्यवस्था नहीं की कई है कि अमुक समय अमुक कार्य्य करें-ऐसे स्थानों में सब कामों को उत्त-रायण शुक्त पन्न, निर्दोष दिन में दोपहर के पहिले करना चाहिये॥२॥

## अपवर्गे यथोत्साहं ब्राह्मणानांशयेत् ॥ ३ ॥

श्रधिकारप्रयोगे समाप्ते यथाश्रद्धं त्रधवरात् ब्राह्मणात् मोजयेत ॥ ३॥

भा०-सब ही कमों की समाप्ति में यथा शक्ति एक, दो या तीन उप-युक्त ब्रह्मियों को भोजन करावे ॥ ३ ॥

यज्ञोपवीतम् ॥ ४ ॥

कर्माङ्ग स्यादिति शेषः। नित्ये विद्यमानेऽपि यज्ञीपवीतान्तरं असङ्गोतिसद्धम्।। ४॥

भा०-आगें कहे जानें वाले कम्मों को यज्ञोपवीत धारण कर करे॥४॥ सौंत्रम् ॥ ५ ॥

तद्यक्कोंपवीतं कार्पाससूत्रकृतं रज्जुर्वासो वा। स्मृत्यन्तराच्छे-षांवगतिः ॥ ४॥

कौशं वा।। ६।।

कुशविकारः कौशम् ॥ ६॥

भा॰-सूत या वंखाया कुशरज्जु में से जो जिस समय मिल सके उस समय उसी का यज्ञोपवीत बनाकर उससे काम लेवे ।। ४ ॥ ६ ॥ ॥

क्षडपवीतं जो बांये कन्धे से दहिने पार्श्व लटकत। हो ऋौर दहिने कन्धे से वाम पार्श्व में लटकता हो उसे 'प्राचीनांबीती' कहते हैं। ऋौर जो माला की मांति गले में पहना जावे उसे निवीत कहते हैं। ्रेग्रीवायां प्रतिमुच्य दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य यज्ञोपवीती भवति ॥ ७ ॥

तत्सौत्रं कौशं वा पाशाकृतिं कृत्वा मीवायामास्च्य देशिएं बाहुमुद्धृत्य तस्याधस्तादबलम्बमानं कृत्वा यज्ञोपवीती भवति । विन्यास-विशेषयुक्ते ऋस्मिन् द्रव्ये यज्ञोपवीतशब्दो वर्तते, तद्थें द्रव्यं उपचारात् ॥ ७॥

भार-जने के बाहिने कन्ये पर रख के बांय कन्ये के बगल में लटकता पहिनने वाले को 'यज्ञोपवीती' कहते हैं।। ७॥

सन्यं प्राचीनात्रीती ॥ ८ ॥

मीवायां प्रतिमुच्य सव्यं बाहुमुद्धृत्य प्राचीनावीती भवति। एतत् पित्र्यं, स्मृत्यन्तरात्। "उपासने गुरूणां वृद्धानामतिथीनां च होसे जप्यकर्मिण भोजने आचमने स्वाध्याये च यज्ञोपवीती स्यात् अन्येष्ट्रप्येवंप्रकारेषु भवति" इति व्याप्तचर्यं, गृह्यशास्त्रे विहिताद्त्य-त्राप्येतदृद्धयमङ्गमिति। निवीतिता नोक्ता, अस्मिच्छास्त्रे निवीतिता कृत्यं नास्तीति , केचित्—'वायसान् वयकामः' इत्यत्र निवीतित्व-मिच्छन्ति वधकामे श्येनयागे दर्शनात्। तद्र्यं च "प्रीवायां प्रतिमुच्य" इति सूत्रं विच्छव "निवीती भवति" इत्यध्याहरन्ति॥ प॥

सर्वकर्मणामङ्गमाचमनं आदौ कर्तव्यम् । तदाह्-

भा०-इसी प्रकार जनेऊ को वांथे कन्धे पर रख के दिहने बगलकत्त के नीचे लटकते पहिनने वाले को 'प्राचीनावीती' कहते हैं। दैव काय्यों में 'यज्ञोपवीत' और पितृ काय्यों में प्राचीनावीत पहनना चाहिये॥ ।।।

त्रिराचस्यायो द्विः परिमृजीत ॥ ९ ॥

उदकं त्रिरङ्गुष्ठमूलतलेन पीत्वाऽङ्गुष्ठमूलतलेना लोमप्रदेशा-इहिः परित स्रोष्टी द्विः परिस्जीताद्भिः ॥ ६॥

पादावभ्युक्ष्यं शिरोऽभ्युक्षेत् ॥ १०॥

पादौ युगपदिभमुखं प्रोत्तेदिद्धः । पृथक्सूत्रकरणं पूर्वोत्तरसूत्राध्यां वैलक्ष्यं गमयितुम् । वैलक्ष्यं च पार्यवयविशेषान्येक्त्वम् ।। १६॥।

भा०-सब ही कम्मों का अङ्ग, आचमन होता है अत स्व-आचमन को कहते हैं। दोनों हाथों को धोकर उचित स्थान में बैठ कर तीन वार आचमन करके दो वार सारे शरीर का मार्जन करे। और दो वार ओठ और अवर में लगा जल साफ करे उनके वाद दोनों पैर; एवं माथे पर जल खिड़के॥ ६॥ १०॥

#### इन्द्रियाएयद्भिस्संस्पृशेत् ॥ ११ ॥

श्रङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चत्तुगी । श्रङ्गुष्ठप्रदेशनीभ्यां नासिके श्रङ्गुष्ठकिनष्ठकाभ्यां श्रोत्रे । श्रप इत्यधिकारात्सिद्धे श्रद्भिरिति प्रत्यङ्गं- मज्यह्णार्थम् । इन्द्रियाणीति सामान्योक्तावि पादयोः पृथग्यह्णात् पाय्वादीनामयोग्यत्वात्, मनसश्चाशक्यत्वात्, त्वचस्सर्वगतत्वात् सिद्धेः, जिह्नायाश्च पाने । पारिशेष्यात्त्त्रयाणामेव ॥ ११ ॥

भा०-त्रौर त्रँगूठा, त्रनामिका त्रँगुलियों से दोनों नेत्रों,त्रँगूठां, प्रदेशनी त्रँगुलियों से नाक के दोनों द्विद्रों त्रौर त्रँगूठा, कनिष्ठिका त्रँगुलियों से दोनों कानों को स्पर्श करे। त्रौर भी त्रन्य इन्द्रियों का स्पर्श करे ॥ ११ ॥

ब्यन्ततः प्रत्युपस्पृश्य शुचिर्भवति ॥ १२ ॥

प्रत्युपस्पृश्येत्युक्ते पूर्वोक्तानां प्रत्येकं स्यात् अतोऽन्तत इत्युक्तम् । उपस्पृश्येति सिद्धे प्रतीति पूर्वमण्युपस्पर्शनमस्तीति सूचयितुम् । पूर्वसुपस्पर्शनमपेद्य प्रत्युपस्पर्शनं भवति । तच्च स्मृत्यन्तराद्गम्यते-'आमणिबन्धनात्पाणी प्रचाल्य' इति । तत्परामर्शे च तत्सहचरितानां 'प्राङसुखं उद्ङमुखो वा शौचमारभेत, शुचौ देशे आसीनो दृक्तिणं वाहुं
जान्वन्तरा कृत्वा यज्ञोपवीती वाग्यतः, हृद्यस्पृशः, अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिः, तीर्थेन पादौ प्रचाल्य" इत्येवमादीनामपि परामर्शस्सिद्धो
भवतीति तैस्तमुख्यः । पादप्रभृति क्रियाविशेषाणां निरपेक्षश्रवणान्मुखमार्जनादीनां निवृत्तिः । शुचिरिति न केवलं कर्माङ्गभाव एवाचमनम्,
अप्रायत्ये सति शुद्धंचर्थमपि भवतीति वेदितव्यम् । भवतीति यज्ञोपवीती भवतीतिवत्।। १२।।

भा०-कर्म को आरम्भ करके या कर्म का आरम्भ न करने पर शयम करने के परचात् पुनः आचमन करके ही कर्म्म करने योग्य पित्रश्र होता है ॥ १२॥

श्रासनस्थानसंत्रेशनान्युदगग्रेषु दर्भेषु ॥ १३ ॥

कुर्यादिति शेषः । विष्युपदिष्टानि नार्थप्राप्तानि आसनादीति, वचनस्यान्यथावैयर्थ्यात् ॥ १३ ॥

भा०-जिस किसी दर्म में बैठ कर जहां कर्म करना पड़े वहां उत्तरामः कुशों पर ही आसन स्थान और बैठने का व्यवहार करे।। १३।।

माङ् मुलस्य मतीयात् ॥ १४ ॥

प्राक् मुख इत्युक्ते कुर्गादित्यध्याहारे कर्तुरेव प्राक्मुखत्वं स्या-दिति सर्वस्यैव कर्म तम्बन्धिनः प्राक्मुखत्वं विधातुं सम्बन्धमात्रवाचिनीं षष्ठीमाह यथा चौले मातुः । वाक्यशेषात्सिद्धे प्रतीयादिति मधुपकें दातुश्चौले नाधितस्य प्रत्यक्मुखमियात् गच्छेदित्यर्थः ॥ १४॥

भा०-श्रौर जहां साफ साफ यह विधान न हो कि श्रमुक दिशा की श्रोर मुखकर बैठे वहां पूर्वाभिमुख बैठ या खड़े होकर कर्म करना सममो॥ १४॥

पश्चादग्नेर्यत्र होमस्स्यात् ॥ १५ ॥

यस्मिन् प्रदेशे होमो विद्यते तत्र प्रधानमङ्गानि च पश्चाद्ग्नेहर-विश्य कुर्यात्। स्यादिति व्याप्त्यर्थं भवतोतिवन् ॥ १४॥

भा०-द्यौर जहां होम करने का विधान हो परन्तु किधर होके होम करे यह नहीं कहा है। वहां होमाग्नि के पश्चिम दिशा में दैठकर कर्मा करे।। १४॥

#### सहशिरसं स्नानशब्दे ॥ १६ ॥

प्रतीयादिति शेष', स्नातामहतेन स्नाप्य कुमारं इत्यादौ । स्नान इत्येव सिद्धे शब्द इति 'गृह्यात्मानमभिषिब्चेत्' इत्यत्र शिरस्यभिषेकार्थम् । इतरथा सेकमात्रमिदं न स्नानभिति न शिरिस म्यात् । स्नाने स्नानतुल्य-वाचिति शब्दे इति सूत्रार्थः ॥ १६॥ भा०-जीर जहां 'स्नाग' करके कर्म करने का विधान हो वहां शिर सृद्धित जल से नहा कर सममन्। ॥ १६॥

दक्षियोन पाणिना क्रत्यमनादेशे ॥ १७ ॥

कुर्यादित्यध्याहारातिसद्धे कृत्यमिति गृद्योक्तादनयद्पि यत्कृत्यं तद्भि दक्तिऐनैव हर्देन कुर्यादित्येवमर्थम् । आदेशवलीयस्त्वासिद्धे अनादेश इति पदार्थस्वभावादेशे०भि निवृत्त्यर्थम्, यथा परिद्ध्यादित्यादौ द्वयोः पारयोः ॥ १७ ॥

मा०न्त्रीर जहां यह त लिखा हो कि दहिने या वांये हाथ से कम्मी करे वहां दाहिने हाथ से कम्मी करना समकता ॥ १७॥

मन्त्रांम्तमच्य कं परस्यादि प्रहाणेन विद्यात् ॥ १८ ॥

मन्त्रान्तं, अव्यक्तं च विनियोगतः परिमाणतंश्च । परस्येत्यस्य-काङ्जावशात् द्वावर्थी, उत्तरस्य मन्त्रस्यत्येकः, प्रधानस्य बोध्यस्यार्थम्येति द्वितीयः । त्रादिश्च प्रहुणं चादिप्रहुण्म् । यथा-संङ्कवेनान्वयः। एर सूत्रार्थः। मन्त्रान्तमुत्तरस्यादिना विद्याद्व्यक्तः विनियोगतः परिमाण्तरच प्रर्थवशेनं विन्नियुक्तं परिमाण्युक्तं च विद्यादिति । अविनियुक्तो हि मन्त्रोऽध्ययनसंस्कृतः कार्यविशेष-सम्बन्धाकाङ्जः कर्मविशेषार्थांना मन्त्रांखां सन्निधावाम्नायमानरित-त्कर्मरोषसातं प्रतिपद्यते, सन्निधिविशोषाद्पर्यवसानाः । तस्मिन्नपि कर्मणि यत्पदार्थप्रकाशनसमर्थीः यस्य तस्यैव शेवम् सामर्थ्यविशेषात्। यस्त्वतत्प्रकाशकः स तत्प्रकाशक एव जपतया आशीर्वादतया वोप-युज्यते । आकाङ्कादिवशाचेयत्तापरिच्छेदो. मन्त्रस्य ॥ ननु परस्यः मह्णेऽनेनैव परिमाण्स्याप्युक्तत्वात् अन्तमादीत्यनेन किम् ! उच्यते-द्वयोर्मन्त्रयोर्भध्यगतस्य यस्य पदस्याभिवानकोऽन्वयो न केतिचदव-गम्यते, तस्यावस्यमेकेनान्वयः कल्प्यः, अन्यथा तस्यानर्थक्यं स्यात्। यस्य वा द्वाभ्याम् भि केनापि प्रकारेणान्वयो दृश्यते तस्याप्येकेनैवान्वयः श्राकाङ्कापूर्तेरेकत्वाच्चावगम्**वते । एतदुक्त**ं भवति−उत्तरसन्त्रादेः प्राक् पूर्व एव मन्त्रोऽनन्वयि यत्किब्चित्पदिमत्येकोऽर्थः, उत्तरमन्त्रादेः

प्रागेव पूर्वमन्त्रो नो तरादिसहित इति द्वितीयः । मध्यमं पदं कि पूर्वेण सम्बध्यते उतो तरेणेति सन्देहे कर्यनातात्रवाद्विरोपाध्यवसायः । श्रह्मार्थस्य न्यायिसद्धेर्न दोषः, नैयाथिकत्वात् सूत्रस्य । वाक्यशेषा-रि उद्धे विद्यादिति न स्वम्च्या कल्पयेत्, न्यायिसद्धेमेव जानीयादि-स्थेवमर्थन् ॥ १८॥

भा०-जित मन्त्रके अन्त का भाग ऐसा स्पष्ट न हो जिस्से विनियोग और उत्तका परिमाण-माज्ञम हो। ऐसी दशा में उत्तर मन्त्र की आदि को लेकर समक्षे या प्रजान मन्त्र के अर्थ को समक्ष कर तदनुसार कार्य्य करे।। १८॥

#### स्वाहान्ता धन्त्रा होमेष ॥ १९ ॥

ये पार्ठैर्न स्वाहान्ताः तेऽपि स्वाहान्ताः कार्याः । 'स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहाऽग्नये कव्यवाहनाय' इत्यत्र न स्वाहान्ताः, श्रायेनैव कृतार्थस्वात्, 'पुरस्तात्स्वाहाकृतयो वा श्रन्ये देवा उपरिष्ठात्स्वाहाकृतयो-ऽन्ये' क्ष इति थुतेः ।श्रिधिकारात्तित्ते मन्त्रा इति व्याप्त्यर्थम् ॥१६॥

भा०-होम करने के मन्त्रों में से जिन मन्त्रों में "स्वाहा" शब्द का प्रयोग-मन्त्र पाठ में न हो तौ भी ऐसे मन्त्रों में "स्वाहा" शब्द को जोड़कर होम वरे।। १६॥

### पाकयज्ञ इत्याख्या यः कश्चैकाश्नौ ॥ २० ॥

संज्ञा व्यवहारार्था । एकाग्निः गृह्याग्निः । एकाग्निमहणं स्त्रन्याग्नि-साध्यानां संज्ञानिवृत्त्यर्थम् । यः कश्चेति 'सप्त पाकयज्ञसंस्थाः' इति दर्शनात् तद्व-चतिरेकार्थं शास्त्रान्तरोक्तसङ्ग्रहार्थं च ॥ २०॥

गृह्य अग्नि में साध्य कम्मों की "पाक यज्ञ" संज्ञा है।। २०॥ तत्रर्त्विक् ब्रह्मा सायंपातहीं भवर्जम् ॥ २१॥

तत्र तिसन्नेव पाकयज्ञे नान्यत्र । अतो मथिते लौकिके वा न ब्रह्मा । ऋत्विगिति 'आर्षयोऽन्रंचानः' इत्याद्यृत्विग्गुण्नियमार्थम्।। २१।। भाव-उस "पाक यज्ञ" में सायं प्रातर्होम कर्म्म को छोड़कर अप्य पाक यज्ञों में ऋत्विग्ही ब्रह्मा होते हैं ॥ २१ ॥

### स्तयं होत्रम् ॥ २२ ॥

सायंत्रातहों मत्रजीमत्य नुवर्तते, इतरथा सूत्रानर्थक्यं स्यात्। तथा हि सर्वहो मेषु स्वामिनो हो मकर्तृत्वं न विधेयं नित्यप्राप्तत्वात् । सार्य-प्राप्तहों मे स्वामिनो इन्यस्यापि कर्तृत्वाभ्यनुक्ञानार्थं सूत्रं, तद्धिकारार्थं मेव हि ब्रह्मासनमनुक्त्वेत दुक्तम् ॥ २२ ॥

भा०-नित्य होम कर्म में स्वयं यजमान का ही अधिकार है।। २२॥ दक्षिणतोऽजनेरुदङ मुखस्तूष्णीयास्ते ब्रह्माऽऽहोमारप्रागग्रेषु ॥२३

अग्नेर्द् चिणतः न होतुः । तूष्णीं वाग्यतः । श्राहोमात् प्रयोग-समाप्तेः ॥ २३ ॥

भा०-त्राग्ति के दिल्ला भाग में ब्रह्मा उतर मुंह हो कर होमकी समाप्ति तक चुपवाप मौन होकर पूर्वाय कुशों पर बैठें॥ २३॥

कामं त्यधियज्ञं व्याहरेत् ॥ २४ ॥

यज्ञोपकार्यन्तरितादि ब्रह्मा ब्रूयात् । त्र्यत एव कर्मविदेव ब्रह्मा । कामं त्विति लौकिकस्यापि कर्मोपकारियो व्याहरसार्थम् ॥ २४ ॥

भा०-परन्तु यज्ञ सम्बन्धी बातें आ पड़ने पर ब्रह्मा वोल सकते हैं॥ २४॥

अयज्ञीयां वा व्याहृत्य महाब्याहृतीर्जपेत् ॥ २५ ॥

वाशब्दान् यक्षियामप्यन्यथासिद्धाम् । जपेत् मनसा । व्याहृतय एव महाक्याहृतयः । "इदं विष्णुः" इति वा ऋचम् ॥ २४॥

भा०-यदि यज्ञ के अतिरिक्त लौकिक विषयों में वात करें तो इसका प्रायश्चित्त स्वरूप व्याहृतियों या "इदं विष्णुः" ऋचा का जप करने से पवित्र होंगे ॥ २४॥

होत्रब्रह्मत्ये स्वयं कुर्वन् ब्रह्मासनम्रुपविश्य छत्रमुत्तरासङ्गं कमण्डलुं वा तत्र कृत्वाऽथान्यत्कुर्यात् ॥ २६ ॥

श्रापत्कल्पोऽयम् । उत्तरासङ्गं उत्त्रीयं वासः । अधान्यदिति

ब्रह्मोपवेशनात्पूर्वं निर्शृतं यत्कर्मतद्नन्तरं विहितं यदवशिष्टं तदित्यर्थः। ख्रत एव न कर्मादौ ब्रह्मोपवेशनप्। क्व तिर्हि ? 'इदं भूमेः' इत्यस्यान-न्तरमेव वद्यामः॥ २६॥

भा०-यदि होतृ कार्य और ब्रह्म का काम एक ही व्यक्ति को करना पड़े तो ब्रह्मा के लिये डाले हुये आसन पर छाता या जल भरा कमएडल रख के उसी प्रकार प्रदक्षिणा आदि पूर्वक अपने होता के आसन पर वाधिस आवे और अग्निहोत्रादि सावारण कार्य भूमि जपादि करे।। २६॥

#### अब्याद्यति यज्ञांगैरव्यदायं चेच्छेत् ॥ २७ ॥

होमाङ्गेसहाग्नेः पराङ् मुखो न भवेत्, श्रन्तरा च न गच्छेहि-त्यर्थः । कुर्यादित्यध्याहारात्सिद्धे इच्छेदिति, यदि प्रमादाद्व्यावृत्तिं व्यवायं वा कुर्यात् तदा पुनः प्रतिमुखः स्यात्, प्रत्यागच्छेदित्येवमर्थम् । पाकयञ्चसाधारणमिदं सूत्रम् । एवमुक्ता परिभाषा ॥ २७॥

> इति खादिरगृद्यसूत्रवृत्तौ प्रथमस्य पटलस्य प्रथमः खण्डः ॥ १॥ १॥

भा०-होम 'कार्यों' को प्रमाद से या किसी कारण न छोड़े या बीच में त्याग न करे। यदि कारणवश छोड़ना भी पड़े तो फिर कार्या-रम्भ करे॥ २७॥ इति

खादिरगृह्यसूत्र प्रथम पटल के पहिले खरड का अनुवाद समाप्त हुआ।। १॥

पूर्वे भागे वेश्मनो गोमयेनोपलिप्य तस्य मध्यदेशे लक्षणं कुर्यात् ॥ १ ॥

गृहस्याभिमुखे गृहैकदेशे भागे पूर्वोपिलप्तेऽपि स्वयं गोशकृतोप-लिप्य उपलिप्तस्य मध्यदेशे लच्चणं कुर्यात्। लच्चणस्य स्वरूपमन्यतोऽवग-न्तव्यम्। पांसुभिः स्थिएडलं कुर्यादित्यर्थः ॥ १॥

भा०-घर के पूर्व भाग में जहां पाक यज्ञ करना हो वहाँ गोवर से लीप कर लिपी हुई जगह के मध्य भाग में यज्ञ वेदी बनावे ॥ १॥

### दक्षिणतः पाचीं लेखामुल्लिख्य ॥ २ ॥

स्थरिडलस्य द्त्रिणापरकोणादारभ्य प्रागपवर्गा रेखामुङ्किखेत् ।।२।। भाः –वेदी के दक्षिण भाग में पश्चिम से पूर्व को रेखा खेंचे ॥२॥

तदारम्भादुदीचीं तदवसानात्माचीं तिस्रो मध्ये प्राचीः ॥ ।।।

पश्चिमरेखारम्भादुत्तराः तिस्रः । कुतः 'त्र्यपित्र्यं सर्वं प्रागपवर्ग-मुद्गपवर्गं वा' इति स्मृतिवाहुल्यान् । एवं सर्वत्रासादेशे ॥ ३ ॥

भा॰-ग्रौर उस रेखा से उत्तर क्रम से तीन रेखा करे। अर्थान् द्त्रिण रेखा से उत्तर मध्य भाग में क्रम से एक के वाद दृसरी, तीसरी रेखा करे॥ ३॥

#### तदभ्युक्य ॥ ४ ॥

उल्लिखितं स्थिरिडलमिद्भरभ्युद्य ॥ ४॥ भाव-और उस वेदी को जल से अभ्युचण करे।। ४॥ श्रिग्निमुपसमाधाय ॥ ५॥

स्थिरिडलस्य मध्ये अग्निमसंमुखमभिमुखं निधाय। उपेत्युपया-गाय यत्र यत्र शास्त्रे एाहोमार्थाऽप्यमिनिवीयते तत्र तत्रोपलेपनाद्यवंति-धानान्तं कुर्यादित्येवमर्थं, यथा सर्पवलौ।इतरथा सर्वत्रैतद्धोमेयु कुर्यात् इति वचनात् ऋहोमार्थे न स्यात्।। ५॥

भा - और वेदी के बीच में अग्नि का आधान वरके तब होम करे यह सावारण विधि सब होम यज्ञ में करना चाहिये ॥ ४॥

## इमं स्तोममिति परिसमृह्य तृचेन ॥ ६ ॥

निशीयमानस्याग्नेः प्रकीर्णान् कणान् समन्तत एकीभावं प्रापय्य प्रत्युचं परितमूद्नं प्रागुपक्रममुद्गपवर्गं कुर्यात्, निराकाङ्क्तवाहचाम्। श्रस्य विनियोगमात्रपरत्वान्नार्थेक्यकल्पनायां प्रभुत्वम् ॥ ६ ॥

भा०-उसके वाद "इमं स्तोमं०" इत्यादि तीन ऋचाओं से यज्ञ बेदी का परिसमूहन करे॥ ६॥

पश्चादग्ने भू भौ न्य अभौ पाणी दृत्दे दं भूमेरिति ॥ ७ ॥

श्चग्नेरनन्तरमेत्र पश्चातृणादिभिस्पहितौ भूमिगताववाङ्मुखौ हस्तौ क्रत्वा 'इदं भूमे.' इति जपेत् । 'श्चन्येषां विन्दते वसु, श्चन्येषां विन्दते धनप्, इत्यनयोस्तुल्यार्थत्वात् विकल्पेन मन्त्रान्तत्वम् ॥ ७ ॥ तयोर्नियममाइ—

भाव-इसके अनन्तर अग्नि के पश्चिम भागमें तृण आदि सहित भूमि पर दोनो हाथ औंत्रे कर के "इदं भूते." मन्त्र का जप करे।।७। वस्त्रन्तं रात्रौ ॥ ८॥

रात्रिकाले विहितं यद्रात्रौ कियते तत्र वस्वन्तमेव । अनन्तरं व्रह्मापवेशनम् । कुतः ? अग्निनिधानात्पूर्वं तावन्नोपवेशनं द्विणतोऽग्नेः इति वचनात् । परतोऽपि 'उपसमाधायसमूद्य न्यक्वौ पाणी कृत्वेदं भूमेः इति क्त्वाप्रत्ययेन समानकर् कत्वस्योक्तत्वाद्वान्तरप्रयोगैकवाक्यत्वाव-गतेर्वाधान्नोपवेशनप् । इदानीं तु विरोधाभावाद्वद्यमाणस्य ब्रह्मापेक्तवान् दुपवेशनप् । पूर्वोक्तानां सूत्रैक्येपि सुखवोधार्थं सूत्रावच्छेदः कृतः ॥ ॥

भा०-थाँर जो कृत्य रात्रि में करना हो तो 'अन्येषां विन्द्ते वसु" पढ़े और नहीं तो "श्रन्येयां विन्द्ते धनन्" यदि (दिन में करना हो तो) तव ब्रह्मा का उपवेशन करे।। पा

परचाइर्मानास्तीर्य दक्षिणतः माचीं मक्षेंदुत्तरतश्च ॥ ९ ॥

श्चग्नेः पश्चात् । प्रागमात् दर्भात् निरन्तरानास्थिष्डिलमुदगपवर्गात् प्रकीर्य दक्षिणतः प्रकीर्णानमेषु गृहीत्वा प्राची प्रकृष्य तथोत्तरतश्च प्रकर्पेत् । यथाऽग्नेः पुरस्तादमाणि सङ्गतानि नस्युः श्चयमेकः कल्पः ॥॥

अपकृष्य वा ॥ १०॥

पश्चात्स्तरणमात्रमेवैकः कल्पः ॥ १० ॥

पूर्वोपक्रमं पदक्षिणमिन स्ट्रणुयान्म्लान्यग्रेश्झाद्यंस्तिवृतं पश्चवृतं वा ॥ ११ ॥

श्चानः पुरस्तात् पृथे ततो दिल्यातस्तत उत्तरतस्ततः पश्चात्। नन् तरतस्समापनीयं 'प्रदिल्याम्' इति वचनात्। न, 'मूलान्यभे श्रञ्जाद-यन्' इति वचनात्। उदगपवर्गे हि मूलेर्प्राणि छादितानिस्युः। नन श्रवार्युत्त्व्य किमिति न स्तरणं, 'झादयन्, रत्युयात्' इति स्तीर्य-माणावस्थायामेत्र स्तीर्यमाणेश्झादनोपदेशात्। एवं तर्हि मूलान्यप्रैरञ्जाद-यन्'इत्यनेन सिद्धत्वात् पूर्वोपक्रमं प्रदक्षिणम्'इत्यनर्थकम्। न, श्रन्यदिप यत् प्रतिदिशं तत्पूर्वोपक्रमं प्रदक्षिणमिति ज्ञापनार्थं, यथा 'प्रतिदिशमु पित्तम्पेत्' इति। श्रत्रापि स्पष्टीकरणार्थत्वात् श्रत्रैवोक्तम् । श्रत्र तु 'प्रथमं दक्षिणतस्तत उत्तरतः'इत्यपि प्रदक्षिणशब्दस्यार्थोऽवगन्तुं शक्यते। इदं स्तरणं त्रिः कृत्वः पश्चकृत्वो वा। पूर्वसूत्राभ्यां विहिते सकृत्सकृदेव। पितृयक्षेष्वार्यं स्तरण्म्, श्रन्वष्टक्ये द्वितीयम्, इतरत्र तृतीयमित्यु-पदेशः। तृतीय पश्च वृतपक्षस्य प्रजाकामपश्चकामयोर्निवेशः॥ ११॥

भाद-समित् डालने आदि द्वारा आग्नि जलाकर उस अग्नि के चारों आर कुशों से इस कम से ढाके कि पहिले पूर्व दिशा में तब दिल्ला में फिर उत्तर में और तब पश्चिम में सब ही ओर तीन या पांच बार कुशा से आच्छादन करे किन्तु ऐसी युक्ति से जिसमें दो, तीन या अधिक कुशा एक स्थान में मिल न जावें और सब ही कुशाओं का अप्रमाग के द्वारा उनका जड़ ढका रहे।। १।। १०।। ११।।

उपिश्य दर्भाग्रे पादेशमात्रे प्रच्छिनत्ति न नखेन पित्रेत्रे स्थो वैष्णव्याविति ॥ १२ ॥

उपविश्येतीतः परं दर्भासनार्थम् । प्रच्छिनत्ति न पाणिना । 'स्रोपधिमन्तर्धाय' इति गृद्धान्तरे ॥ १२ ॥

अद्भिरुन्मृज्य विष्णोर्मनसा पूर्ते स्थ इति ॥ १३ ॥ उत् ऊर्ध्वम् ॥ १३ ॥

भा०-इसके वाद पहिले से इकट्ठा किये हुये कुशात्रों में से प्रादेश प्रमाण दो कुशात्रों को लेकर "पवित्रेश्यो" त्रादि मन्त्र से त्रोषधि के वीचो वीच छेदन करे। उसके पश्चात् "विष्णोर्मनसा०" मन्त्र से उस को जल में धो कर ॥ १२ ॥ १३ ॥

उदगग्रे अङ्गुष्ठाभ्यामनामिकाभ्यां च सङ्गृह्य त्रिराज्यग्रुत्पुनाति "देवस्त्वा सवितोत्पुनात्विच्छद्रेण पवित्रेण" 'वसोस्सूर्यस्य रश्मिभिरिति ॥ १४ ॥ मन्त्रध्यापि त्रिरावृत्तिः, प्रदेशान्तरे 'द्विस्तूष्णीम् इति, यत्रान्त-रान् । उत्पुताति प्राचीमूर्धं तिपति । ऋचि द्रद्रेण पवित्रेणेति संश्लिष्ट-योस्तमुदायमाद् ॥ १४ ॥

भाग-उत्तरात्र करके आज्योत्पवन करे। अर्थात् आज्य में पड़े हुर तृण आदि को निष्ठाल कर पूर्व की ओर ऊपर को फेंक देवे। और आज्य के उत्पवन करते समा दोनों पित्र को अंगूडा और अन् नामिका अंगुली से पकड़ कर एकवार "देवस्त्वां" इत्यादि यजू मंत्र से और दोबार बिना मन्त्र के उत्पवन करे॥ १४॥

# अभ्युक्ष्यते अमावतुमहरेत् । १५ ।

त्राद्भिरभ्युत्त्य पवित्रे उद्गाये श्रमी प्रतिपेत् । श्रम्वित उत्पवने-ऽनुगते उद्गाये इत्यर्थः ॥ १४ ॥

#### त्राज्यमधिश्रित्योत्तरतः कुर्यात् ॥ १६ ॥

त्रानेरुत्तरे भागे स्थाल्या सहाज्यमुपनिधाय कुर्यात् । किं कुर्यात् ? शास्त्रान्तराद्गन्यते−द्विरुल्मुकेनाभिज्याल्य द्वे दर्भांत्रे प्रसिः त्रिरुल्मुकेन प्रदक्तिशं परिहृत्य उत्तरतो वर्हिषि निद्ध्यादित्यर्थः ॥१६॥

भाट-आज्य उत्पवन के बाद उन दो पवित्रों को जल में धोकर ऋप्नि में फेंक देवे। इसके बाद ऋप्नि के उत्तर भाग में जलते हुये ऋंगारे पर पहिले पवित्र ऋाज्यपात्र को रक्खे तब चरुरथाली को रक्खे। १४॥ १६॥

दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेनाग्निमदितेऽतुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलि प्रसिश्चेत् ॥ १७ ॥

द्त्रियोन जानुना भूमिगतो ब्रह्माप्रचोरन्तरेण उद्द्रपूर्णमञ्जलि मवसिञ्चेत् ॥ १७ ॥

भाट-पूर्वोक्त ( १-२७-२८ ) अग्नि का आधान तथा परि समूहन वरके दिहना जानु भूमि पर टेक कर "अदितेट" इत्यादि मंत्र से अग्नि के दिच्चण भाग में उदकाञ्जलि सीचे ॥ १७॥ त्र पुमनेऽनुमन्यस्येति पश्चात् सरस्यत्य पुमन्यस्वेत्युत्तरतः॥१८॥ होमाङ्गानामप्युत्तरनः । रेखावद्ञ्जलि नेकः हष्टानुगुण्यादहष्टे

कल्पनान् यनः ॥ १८ ॥

भार-"अनुमतेर" मन्त्र से अग्नि के पश्चिम भाग में दूसरी उदका-अलि सीचे। और "सरम्बत्यनुर्" मन्त्र से अग्नि के उत्तरभाग में तीपरी उदकाअलि सीचे॥ १८॥

देव समितः प्रमुदेति प्रदक्षिणपरिंत पर्युक्षेदिभिषरिहरतः हन्यम् ॥ १६ ॥

प्रसिक्त्वेदिति प्रकृते पर्युत्तेदिति एतावत एव पर्युत्तसंज्ञार्थं 'पर्युत्त्त्एावर्जप्' इत्यत्र होमाङ्गं सर्वमात्रभीवयत्र। प्रागुपकतमुद्का- अस्ति पर्युत्तेत्।। १६॥

भा०-ऋौर "देव सवितः ।" मन्त्र से अग्नि की प्रदक्षिणा कर जल

धारा गेरे ॥ १६॥

सकृत्त्रिर्वा ॥ २० ॥

सक्तत्मन्त्रमुक्त्वा त्रिर्वा पर्युत्तेन ॥ २०॥ भा –एक या तीन वार मन्त्र पढ़कर पर्युत्तग् करे॥ २०॥ समित्र आधाय ॥ २१॥

श्रीदुम्बराः स्वादिराः पालाशा वा तद्भावे यक्कियाः पञ्चद्श सभिवोऽम्नावायाय एकामुक्तरतो वर्हिषि निद्ध्यादित्यध्याहारश्शाम्बान्तरात् श्रनन्तरमस्वेर्श्वनमाचारात् ॥ २१ ॥

भा०-इसके पश्चान् गुलर, खैर, पलाश या इनके अभावमें यिद्यय काष्ट्रों में से किसी काष्ट की १४ समिया को अग्नि में डालकर एक समिया के उत्तर भाग में विहैं: कुश को धरे ॥ २१॥

प्रपदं जिन्दियोपताम्य कल्यागां ध्यायन् वैरूपाक्षमारभ्योच्छ्व-सेत् ॥ २२ ॥

'तपश्च तेजश्च' इत्यारभ्य 'ब्रह्मणः पुत्राय नमः' इत्येवमन्तस्य प्रपदशब्दो वाचकः। जिपत्वेति जपन्नित्यर्थः, 'विरूपाचोऽिम' इत्यस्य प्रपद्मध्यपातित्वात् पौर्वापर्यानुपपत्तेः । कल्याग्रशब्दोऽपद्मग्वाचकः । निरुच्छासो भूत्वा प्रपदं जपन् 'भूर्भुवस्वरोम्' इत्योङ्कारे परमात्मज्ञानं मे भूयादिति ध्यायन् यथासामध्यमोङ्कारं सावयित्वा 'विरूपान्तोऽसि दन्ताक्षिः' इत्युच्छ्र्वसेदित्यर्थः । नित्येष्वेवम् ॥ २२ ॥ काम्येष्वाह—

भा > - "तपश्च तेजरच" - यहां से लेकर "ब्रह्मणः पुत्राय नमः " - यहाँ तक को "प्रपद् श्वकतं हैं "विरूपाचोऽितः इसका पाठ प्रपद् वाचक मन्त्रों के बीच में पड़ा है। श्रीर कल्याण - शब्द मोच का वाचक है। श्वास को रोक कर प्रपद का जप करता हुआ "भू भुंवस्त्ररोम् का ध्यान करता हुआ परमात्मा का ज्ञान मुभे हो-इसका ध्यान करता हुआ "विरूपाचोऽितहन्तािक्षः" जपकर श्वास लेवे॥ २२॥

प्रतिकामं काम्येषुः । २३ ॥

काम्यमहण्मुपलत्तर्णं प्रज्ञातसाध्यविशेषवतां कर्मणाम् । तेषु विशेषमेव परामृश्य इदं मे भूयादिति ध्यायन्नित्यर्थः ॥ २३॥

भा०-यह नित्य कम्मों का विधि है परन्तु काम्य कमों में विशेषता है जिसकी अगले सूत्र में कहते हैं—

काम्य कम्मों में जिस कार्य की सिद्धि की कामना रखतः हुआ कर्म करे उत कामना का ध्यान करता हुआ पूर्वोक्त प्रकार से प्रपट का जप करे।। २३।।

सर्वत्रैतद्धोमेषु कुर्यात् ॥ २४ ॥

सर्वत्रित व्याप्त्यर्थम् । एतत् उपलेपनादि प्रपदान्तं सर्वं पदार्थ-जातं सर्वत्र होमात्मके कर्मणि तत्तद्विशेषेभ्यः प्रागेव कुर्यात् । यानि तु धृतेऽग्रौ तिस्मिन्नेव देशे क्रियन्ते तेष्त्रर्थलोपाद्ग्न्युपसमाधानान्तस्य निवृत्तिः ॥ २४ ॥

इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमपटलस्य द्वितीयः खण्डः ॥ १ । २ ॥

भा०-सब ही होस कम्मों में उक्त ( उप लेपनादि १-२२ सू० तक ) कमों को करके अन्य कार्य करे॥ २४॥ इति

खादिरगृह्यसूत्र प्रथम पटल के दूसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुन्त्रा॥ १॥ २॥ त्रह्मचारी वेदमधीरंयोपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो दारान् कुर्वीत ॥ १ ॥

त्रह्म वेदः, वेदाध्ययनार्थानि गोदानादीनि त्रतान्यप्रीन्धनादीनि
च स्मृतिकारैक्कानि लज्ञ्णया ब्रह्मेत्युच्यन्ते । तान्यनुतिष्ठन्नेकां
शास्त्रास्ययनप्रयोगमर्थनिश्चयपर्यन्तं षडङ्गं परिसमाप्य उप
गुरुसमीपं निष्पाद्य स्वयं गुरवेऽभिलिषतद्रच्यमार्जियत्वा तत् गुरुसमीपमाहृत्य गुरवे त्राचार्याय दत्वा तेनैव गुरुणा त्वं विवाहं स्नानं च
कुर्वित्यनुज्ञातस्सद् दाराद् कुर्वीत भार्यां कुर्वीत यथाऽऽत्मानं प्रति भार्याः
भवति तथा कुमारीं संस्कुर्योदित्यर्थः। दारानिति बहुत्वपुंस्रवे अविवचते। त्राविष्टलिङ्गवचनत्वात्। एवं वृत्त्यर्थेऽध्यापने। त्र्रदृष्टां तु
गुरुद्विणामद्त्वाप्यनुज्ञामात्रादेव विवाहः। 'सहस्रं श्वेतं चारवं
प्रदायानुज्ञातो वा' इति श्रुतेः। तद्र्थं चोपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातो वेति
वाश्वदं केचिद्ध्याहरन्ति। दिच्छात्वान्नोदकपूर्विमदं दानम्॥

श्रपरा व्याख्या वाशव्दाध्याहारेण—त्रह्मचारी वेदं वाऽधीत्येति द्वादशवार्षिकं षट्त्रिंषदाव्दिकं तद्धिंकं पादिकं वा त्रह्मचारी त्रतं त्रह्म तच्चिरित्वा वेदं सकलमनधीत्यापि विवाहः । श्रथता त्रतं चिरित्वा वेदं सकलमनधीत्यापि विवाहः । श्रथता त्रतं चिरित्वा वेदं सकलमधीत्य विवाह इति । श्रास्मन् व्याख्याने नार्थाववोधपर्यन्तमध्य-यनम् । केचिदाहुः—

पट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैविद्यकं त्रतम्। तद्धिंकं पादिकं वा प्रह्णान्तिकमेव वा॥

इत्यस्मिन्मानवे श्लोके वेदत्रयार्थत्वेन पट्तिंशदादेककत्वान, 'वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि' इति चानेनैवोक्तत्वान्, वेदहास-वशात् काले हासोऽप्युक्त एवेति त्रिवर्षादिचरणमप्यनुज्ञातमेवेति । तचुक्तमयुक्तं वेति विचारणीयम् । त्रह्यचारीत्यस्यापरा व्याख्या—वेद्र- त्रतानि चत्वारि गोदानं त्रातिकं आदित्यत्रतं माहानाम्निकमित्येतानि, गोदानं त्रातिकं आदित्यत्रतं माहानाम्निकमित्येतानि, गोदानं त्रातिकं आदित्यत्रतं माहानाम्निकमौपनिषद्मित्येतानि वा ब्रह्म तचरित्वा विवाह इति । अस्यार्थस्य न्यायमूलत्वं केचिदाहु:-ब्रह्मचारि- व्रतानि पुक्षसंस्कारार्थानि नाध्ययनाङ्गानि पुक्षोद्देशेन विधानात्

श्रतस्तिद्विधिपर्यवसानिवन्यनोऽयं त्रतस्नानोपदेशः । अध्ययनविधिरिप न विचारपर्यन्तः,रागत एव तिसद्धेः। श्रतस्तित्रवन्थनो वेद्रस्नानोपदेश इति । तिद्दं मीमांसकैर्नेष्यते । वाक्यशेषात्सिद्धे कुर्वीतेति नान्दीमुखा-देरुपसङ्ग्रहणार्थम् ॥ १ ॥

भा०-त्रह्मचारी ऋर्थ पाठ सिहत साङ्गवेद को पढ़के आचार्य को इच्छित दिल्ला द्रव्य लाकर देकर और उनकी आज्ञा (अब तुम समावर्त्तन करके अपने अनुकूल कुमारी से विवाह करो ) से सवर्णा कुमारी कन्या से समावर्त्तन पूर्वक विवाह करे॥ १॥

#### श्राप्टवनं च ॥ २ ॥

उपन्याहृत्य गुरवेऽनुज्ञातः कुर्वीत इत्यस्यानुकर्षणाथश्चकारः । श्राप्तवनं स्नानं समावर्तनम् दारासवने इति वक्तव्ये प्रथग्महणं प्रथकप्रयोगार्थम् । श्रत एव कालोऽपि भिद्यते । व्युत्कमस्तु दाराधिगन्तुरेवास-वनं न नैष्ठिकस्य इत्येवमर्थम् । इतरथा ह्यध्ययनपरिसमाप्तिनिमित्तमा-सवनिमत्युपराङ्कयेत ॥ २ ॥

भा०-च्यौर तब समावर्त्तन संस्कार करे॥२॥ तयोराष्ठवनं पूर्वम् ॥३॥

जायापत्योर्विवाहात्पूर्वमासवनं कर्तव्यं, तत् पुरुषस्य मन्त्रक्रमातु-सारेण परस्ताद्वद्यते 'त्रासवने पुरस्तात् 'इत्यारभ्य ॥३॥ स्त्रियास्त्वाह— भा०-कन्या श्रौर पति विवाह के पहिले स्नान करे। पति तो मन्त्र पूर्वक स्नान करे श्रौर कन्या विना मन्त्र के ही॥ ३॥

# मन्त्राभिवादात्तु पाणिग्रहणस्य पूर्वं व्याख्यातम् ।४।

वध्वाः पाणिगृ हातेऽस्मिन्निति पाणिग्रहणं विवाहः । विवाहस्य काले वध्वा आसवनं मन्त्रलिङ्गानुसारेण कर्तव्यमिति सूत्रार्थः । तुशब्दो विशेषणार्थः । यद्यप्यासवनं स्नानं प्रसिद्धं,तथाऽपीह वध्वा उपस्थासवन- मात्रे आसवनशब्दः मन्त्राभिवादादिति । पूर्वमिति यत् पूर्वमासवनं पूर्वमन्त्रद्योतितसुरासाधनकं तदेवोत्तरमन्त्राभ्यामि कर्तव्यमित्येवमर्थम् अत एव मध्वाज्यशब्दाभ्यामि सुरैव लच्चण्योच्यते सुरेतिचात्र पिष्ट- सयुक्तं सुद्दं लच्चण्या पेष्टीसुरासादृश्याद्वच्यते,

मुख्यसुराया, श्रस्षृश्यत्वात्, श्रनाचाराच्च । वीति विविक्तवाचि । विविक्तकर्ष्कं पाणिश्राहकज्ञातिकर्ष्किमिद्मामवनिमत्यर्थः श्रमुमिति मन्त्रे च पत्युः परोज्ञविन्देंशाद्ष्ययमर्थो विज्ञायते । श्रध्याहारात्सिद्धे श्राख्या-तिमित यद्पि वृद्धैरन्यदाख्यातं तद्पि कर्त्तव्यमिति । किं तत् १ नान्दी-मुखं कौतुकवन्धनं सङ्कल्पः इत्येवमादि । एवं प्रयोगः-विवाहिदवसा-त्पूवेंद्युः पूर्वाह्वे नान्दीमुखश्राद्धं कुर्यात् । युग्मान् त्राह्मणान् प्राङ्मुखानु-द्गमे षु दर्भेपूपवेश्य नान्दीमुखेभ्यः पित्तभ्यस्वाहा नान्दीमुखेभ्यः पित्तमहेभ्यस्त्वाहा नान्दीमुखेभ्यः पिता महेभ्यस्वाहा नान्दीमुखेभ्यः प्रपितामहेभ्यस्वाहीत लौकिकेऽमौ भोजनार्थं पक्वेन हविष्येणान्नेन चरुतन्त्रेण परिचरणतन्त्रेण वा हुत्वा गन्ध-पुष्प्यूपदीपवास्त्रोमिर्यथालाभं यथाविभवमर्चित्वा भोजियत्वा उच्छि-ष्टसमीप उद्गमे पु दर्भेषु द्धिवद्राज्ञतिमश्रान् पिरहान् द्यात् होममन्त्रे-रुद्गपवर्गान् । स्वाहास्थाने तृप्तिरित्विति विकारः। एतन्नान्दीमुखश्राद्धम् । स्त्रत्र स्थाकः—

पुंसीनामान्नचौलौपस्नानपाणित्रहेषु च । च्यग्न्यायेये तथा सोमे दशस्यभ्युद्यं स्मृतम् ॥ इति ॥

केचिन्नान्दीमुखश्राद्धमागामिनश्श्राद्धस्य प्रत्याम्नायमाहुः । स्वधा प्रित्वित पिण्डदाने मन्त्रान्तमाहुः । ततः पर्युर्ज्ञातयो वध्वासवामिन-मागत्य वर्षां कुर्युः—भारद्वाजगोत्राय विष्णुश्रमणे काश्यपगोत्रजां श्री-देवीदां धर्मप्रजार्थं वृणीमह इतिवद्यागोत्रं यथानाम वर्षां कुर्युः । दास्यामीति प्रतिवचनम् । तत त्रासवनं 'काम पेद ते' इत्यादिभिर्मन्त्रैः स्वाह्यकारान्तैः पिष्टसंयुक्ते नोद्केन पत्युर्ज्ञातयशिशिथलीकृतवस्त्राया वध्वा उपस्थमासावयन्ति । प्रतिमन्त्रममुमित्यत्र पतिनाम ब्र्युः-विष्णुशर्माण्-मितिवत् । ततः पुष्याह्वाचनम् । सर्वकर्ममु पुष्याह्वाचनमादौ कर्तव्य-मित्याचार्या त्राहुः । नान्दीमुखपुण्याह्वाचने त्रानित्ये, त्राचार्येणावचनात् । करणेऽभ्युदयविशेषः । ततो वध्वास्त्रामी वधूमङ्कमारोष्य भारकागोत्राय विष्णुशर्मणे काश्यनगोत्रजां श्रीहेवीदां तुभ्यमिमां प्रजा-सहत्वकर्मभ्यः प्रतिपादयामीतिवत् यथागोत्रं यथानामोवत्वा पाणिग्रा-हस्य पाणावुदकं सिक्चेत् । ततो ब्रह्मोपवेशनान्तम् ॥४॥ तत त्राह्—

भा०-यों तो स्नान करना सावारण सा काम है जो भली भाँति प्रकट है परन्तु विवाह के पूर्व जो कन्या का स्नान कराया जाता है. ऋर्थान विवाह होने के पिहले कन्या या वर ज्ञाति की ख्रियां कन्या को उपटन लगाकर और कन्या के उपस्थ इन्द्रिय को भलीभांति उपटन से मलकर साफ करके स्नान करावे। तव विवाह के योग्य कन्या होती है॥ ४॥

व्राह्म सस्पद्देश स्था प्राप्ति वाग्यतोऽप्रे सार्थित होत है सुखिस्त होत ।। ५ ॥

उत्तरवासमा सकर्णं प्राष्ट्रतशिरा उद्कपूर्णकुम्भं शिरला धारयत् उद्कप्रदेशात् पूर्वेणाप्तिं गत्वा त्रह्मणः पुरस्तादुद्गप्रेषु दर्भेषु उद्ङ्मुख-स्तिष्ठत् । श्रा मूध्न्यवसेकाद्वाग्यतः ॥ ४॥

भाव-पुरोहित या कोई ब्राह्मण उत्तरीय वस्त्र से अपने कान क्योंर शिर को ढाक कर जल भरे कलश को अपने माथे पर घर के जल रक्खे स्थान से उठकर अग्नि के पूर्व होकर ब्रह्मा के आगे उत्तराय कुशाओं पर उत्तराभिमुख (जब तक माथे पर जल का सेक न हो) खड़ा रहे।। ४॥

स्नातामहतेनाच्छाद्य या श्रक्कन्तित्यानीयमानायां पाणि-ग्राहो जपेत् सोमोऽदददिति ॥ ६ ॥

पाणियाहो वधूदेशं गत्वा पूर्वमेव सहिशासं ग्नातां वधूं नव-वस्तद्वयेन 'या अक्टन्तन् परिधत्त' इत्याभ्यां ग्वयमेवाच्छाद्य पुनरिमदेशं गत्वा प्रदात्रा तं देशं वध्वां प्राप्यमाणायां तां वीद्य पितः 'सोमोऽद्दत्' इति जपेत्। 'या अक्टन्तन्' इत्यधरवासोदानं, 'परिधत्त'इत्युत्तरीयदानम् ततः 'प्र मे पितयोनः' इति वधूर्जपेत्। 'प्रास्याः पितयानः' इति पित-र्जपेत्, मन्त्रालिङ्गात्॥ ६॥

भा०-पहिले से नहाई हुई वधू के पास पाणिग्रहण करने वाले जाकर दो नये वस्त्रों को लेकर कन्या के सारे शरीर को 'या अकृन्तन्' और 'परिधत्त' मन्त्रों को पढ़कर ढाक देवे और फिर अग्नि कुएड के पास जाकर कन्यादाता से ले जाती हुई बहू को देखन्दर पति 'सोमो- ऽद्दृत्' मन्त्र का जप करे। श्रौर 'या श्रक्तन्तन्' मन्त्र पद्कर नीचे पह-नने का वृक्ष कन्या को देवे श्रौर 'परिधत्त' मन्त्र पद्कर श्रोदने का वृक्ष देवे। तब 'प्रमे पतियानः' मन्त्र वहू जपे। श्रौर 'प्रास्याः पति-यानः' मन्त्र पति जपे॥ ६॥

#### पाणिग्राहस्य दक्षिणत उपनेश्येत् ॥ ७॥

सन्निधानात्मिद्धे पाणित्राहस्येति पत्युरेवासन उपवेशनार्थम् । दर्भेषूपवेशयेत् वधूमानेता । ततः परिस्तरणादिप्रपदान्तं कृत्वा त्राज्यसं-स्कारानन्तरमाज्यं स्त्रविमध्मं शमीपलाशिमश्रं सलाजं च शूर्पमग्नेरुत्तर-तो बर्हिषि निद्ध्यात् । द्यत्पुत्रं चाग्नेः पश्चात् । द्यत्पुत्रोद्कुम्भयोः परिवचने वहिर्मावः, त्राह्व्यत्वात् ॥ ७॥ प्रपद्जपानन्तरमाह—

भा०-श्रौर उसके पश्चात् वहू को पिन के दिल्ला भाग में कुशों के श्रासन पर बैठावे श्रौर परिस्तरणादि से लेकर प्रपद तक विधि करके श्राज्य संस्कार करके श्राज्य, खुवा सिमधा, श्रौर शमी या पलाश के पत्ते सिहत लावा धूप में घर के श्रिम के उत्तर में विर्हि: कुश पर रक्खे लोढ़ी शीलवट श्रिम के पश्चिम भाग में धरे॥ ७॥

अन्यारव्यायां सुरेणोपघातं महाव्याहृतिभिराज्यं जुहुयात् ॥८॥

श्रनु सादृश्ये, उपवेशनवत् । श्रन्वारञ्घायां वध्वां द्विणेन पाणिना पत्युर्वृत्तिणं वाहुं, तस्य सिन्नधानात् स्पृप्टवत्यां वध्वां विद्धिषि निहितेन स्रुवेणोपहृत्योपहृत्य संस्कृतमाज्यं 'भूरस्वाहा भुवस्स्वाहां स्वस्त्वाहां' इति प्रतिमन्त्रमप्तौ जुहुयात् पितः । स्रुवस्यस्वरूपमाध्वयवे प्रसिद्धम् । ननु उपघातमित्यवाच्यं, श्रर्थसिद्धत्वान् । श्राज्यमिति चावाच्यं 'श्राज्यं जुहुयाद्धविपोऽनादेशे' इति वचनान् । जुहुयादिति चावाच्यं वाक्यशेषात्सिद्धेः । इदं तिर्हं प्रयोजनम् यत्रोपघातमिति वद्यित, यत्राज्यं प्रधानद्रव्यं,यत्र वा मन्त्रमनुक्त्वा होमं विधास्यित तत्र तत्र व्याहृतिभिः जुहुयादिति । श्राज्यमेव च द्रव्यं परिभाषितत्त्वात् ॥ ।।।। भा०-प्रपद जप के वाद बहू अपने दहिने हाथ से पित के दिहने हाथ को खूती हुई और विहिं: कुश पर रक्खे हुये सुवा से पित संस्कृत आज्य को ले लेकर 'भूस्स्वाहा' 'भुवस्स्वाहा' 'स्वस्स्वाहा' व्याहृति मन्त्रों को पढ़ पढ़ कर अग्नि में हवन करे॥ =॥

समस्ताभिश्चतुर्थीम् ॥ ९ ॥

भूर्भुवस्वस्वाहेति मन्त्रः। अन्वारन्त्रायामिति वर्तते। अयं होमो नोपघातादिस्चितेष्वस्ति, समस्ताभिश्चेति सिद्धे चतुर्थीमिति ज्यचरिनर्देशात्। त्रिष्विप विवाहहोमेपु 'चतुर्थी स्यात्' इति अधिक-वचनात् चतुर्थीं चतुर्थीं जुहुयादिति वीष्सार्थी गम्यते नातिप्रसङ्गः। सन्निधिविशेषाच तद्वीष्सासिद्धिः॥ ६॥

भार-तीन चाहुतियां तो 'भूस्त्वाहा' चादि से चौर चतुर्थी चा-हुती 'भूर्भुवस्त्वस्वाहा" इस सारी व्याहृति से देवे ॥ ६॥

एवं चौलोपनयनगोदार्नेषु ॥ १० ॥

चतुर्थीमात्रातिदेशः । ननु गोदानमहण्यमनर्थकं 'गोदाने चौलवन् कल्पः' इत्यनेनैव सिद्धत्वान् । न,तत्र केशक्तुष्तिमात्रस्यातिदेशात् ।१०। भा०-इसी भांति चूड़ाकरण्, उपनयन ऋौर केशान्त संस्कारों में हवन करे ॥ १०॥

अग्निरेतु प्रथम इति षड्भिश्च पाणिप्रहणे ॥ ११ ॥ चशब्दोऽन्वारम्भानुकर्षणार्थः ॥ ११ ॥

भाव-"अग्नि रेतुप्रथमः०" इत्यादि छः मन्त्रों से पाणित्रहण् संस्कार में हवन करे॥ ११॥

नाज्यभागौ न स्त्रिष्टकृदाज्याहुतिष्त्रनादेशे ॥ १२ ॥

उपघातादिशब्दसूचितास्वाज्याहुतिषु सतीष्वाज्यभागौ स्विष्टकृष न स्युः । नाज्यभागस्विष्टकृत इति वक्तव्ये पृथग्प्रह्णं यत्र न स्विष्टकृत् तत्राज्यभागौ न स्तः इत्येवमर्थं, यथा वास्तुहोमे । सौविष्टकृतीमष्टम्येति पशावादेशास्तत्र प्रतिषेधाभावार्थमनादेशे इत्युक्तम् ॥ १२ ॥

भा -जहां हवन करने में किन मन्त्रों या किस प्रकार का हवन

होगा ऐसा स्पष्ट आदेश नहीं है वहां न आज्य भाग और न स्त्रिष्टकृत् होम होगा ॥ १२ ॥

## सर्वत्रोपरिष्टान्महाव्याहृतिभिः ॥ १३ ॥

सर्वत्रेति व्याप्त्यर्थन् । प्रतिकर्म विशेषविहितं कृत्वा भूरःवाहा भुवस्त्वाहा स्वस्त्वाहेत्याज्यं जुहुयात् । प्रपदान्तवत्त्वेव प्रयुक्ताज्य-लाभात् नात्रान्वारम्भः ॥ १३॥

भा०-सब ही कम्भों में प्रति कर्म विहित हवन करने पर महा व्याहृति से हवन करे॥ १३॥

#### प्राजापत्यया च ॥ १४ ॥

'प्रजापते न त्वदेतानि' इति प्राजापत्यया । चशब्द्स्सर्वत्रोपरिष्टा-दित्यस्यानुकर्षणार्थः ॥ १४ ॥

भा०-श्रौर "प्रजापते न त्वदेतानि ' मन्त्र से भी हवन करे ॥१४॥
प्रायश्चित्तं जुहुयात् ॥ १५॥

प्राजापत्ययेति वर्तते । यत्रान्तरितविपर्यासादौ प्रायश्चित्तापेत्ता तत्र प्राजापत्यया स्नुवेणाज्यं जुहुयात् सन्यानार्थमिति सूत्रार्थः । त्राच्यत्तरितं कृत्वा प्रायश्चित्तम् । सित्रपत्योपकारकाङ्गान्तराये उपकार्ये निवृत्तप्रयोजने प्रायश्चित्तमेव, नान्तरितस्य पुनःकरण्ण् । पदार्थविपर्यासे प्रायश्चित्तमेव न क्रमार्थं पुनरावृत्तिः । आज्यसंस्कारा-त्पूर्वं चेन्निमित्तं स्यात् संस्कृते आज्ये प्रायश्चित्तं कुर्यात् । उत्तरकाले चेन्निमित्तं परिज्ञानानन्तरमेव । वाक्यशेषात्सिद्धे जुहुयादिति अग्न्यनुग-तादावप्येतदेव प्रायश्चित्तमित्येवमर्थम् । इत्तरथा प्रकृतत्वात् प्रपदान्त-वत्सु कर्मस्वेव रयात् । बहिस्तन्त्रे तु आज्यतन्त्रेण् परिचरणतन्त्रेण् वा प्रायश्चित्तहोमः । तन्त्रमध्ये तु तत्तत्तन्त्रमेवोपजीवति ॥

मन्त्रलिङ्गाद्पि सर्वत्र प्रायश्चित्तार्थता गम्यत एव । अयं मन्त्रार्थः-हे प्रजापते! यान्येतानि निमित्तानि प्रजातानि तानि त्वत्तोऽन्यो न कश्चिद्पि प्रतिसमाधाने परितावमूव न पदार्थीकर्तुं समर्थः। अतो यत्समाधानकामा वयं तुभ्यं जुहुमः तद्स्माकमस्तु । तत्समाधानाच रयीगां वनत्र्ल्यानां

च पुरुवार्थानां वयं स्वामिनः भूयास्मेति । स्वद्रव्यत्यागलच्यानां कर्मसां कालात्यये 'यत्कुतीदम्' इति होमः प्रायश्चित्तं मन्त्रलिङ्गात् । प्रपद्दान्तवन्त्रकर्मलोपे आज्यतन्त्रं, इतरत्र परिचरणतन्त्रम् । अयं मन्त्रार्थः —यत्कुत्सीदं ऋणतुल्यमवश्यं प्रदेयमप्रदतं मया इह जन्मनि थेन अप्रदत्तेन निधिना निधितुल्येन यमस्य सदने यथेष्टं चरामि तत्प्रदेयमिद्मेवाज्यं तत्कार्यकरं हे अग्ने ! जीवन्नेवाई तुभ्यं तत्प्रति तत्प्रदेयं प्रति तत्त्समाधानाय द्दामोत्यर्थः । सर्वत्राङ्गभ्रे षं प्रयोगसमाप्त्युत्तरकालं यदि स्मरेत् तत्र न पुनः करणं नापि प्रायश्चित्तं प्रधानसम्बन्धायोगात्, विगुणमेव तदस्तु । प्रधानम्र षे तु साङ्गस्य पुनराष्ट्रत्तिः । बहुप्रधानके तु भ्रष्टस्यैव प्रधानस्य साङ्गस्य पुनराष्ट्रत्तिः नाभ्रष्टस्य । एवमकरणे शाष्ट्र्यायनिप्रोक्तं प्रायश्चित्तं प्राजापत्यया यत्कुतीद्मित्यनेन सर्वत्र विकल्पते । पूर्ववत्तन्त्र-नियमः ।

त्रागतेऽप्रावग्न्यन्तरसंसगें रजस्वलाऽभिगमने दिवामैथुने कुमा-रस्य संस्काराकरणे मेखलाऽधारणे सन्ध्यादिलोपे च शाट्यायनिप्रोक्तं प्रायश्चित्तं स्यात् । अनुगतादौ दोपलघुत्त्वगुरुत्वापेक्त्या तन्त्रनियमः यथाऽल्पकालिक्छेदे परिचरणतन्त्रं बहुकालाविक्छेदे आज्यतन्त्रमिति ॥ भूस्त्राहा । भुवस्त्र्वाहा । स्वस्त्वाहा । पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा । पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा । यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा । सर्वं पाहि शतकतो स्वाहा । पाहि नो अग्न एकया । पाह्युत द्वितीयया । पाहि गीभिस्तिस्वभिक्त्जां पते । पाहि चतस्वभिवंसो स्वाहा । पुनक्तां निवर्त-स्व पुनरम्न इपायुषा । पुनर्नः पाद्यं हसस्त्वाहा । सह रय्या निवर्तस्वान्ते पिन्वस्व धारया । विश्वपन्त्या विश्वतस्परि स्वाहा । पुनश्च व्याहृतिभि-राज्यं जुहुयात् इति शाट्यायिन विधानम् ॥

पुनराधाननिमित्ते तु पुनराधानमेव कुर्यात् । अग्नेद्वादशाहवि-च्छेदः, अग्नेः स्वेच्छया त्यागः, जायाभर्त्रोः प्रवासः श्वकाकचण्डालरज-स्वलादिस्पर्शः समारोपितसमिन्नाश इत्येतानि पुनराधाननिमित्तानि । तस्य विधिः—दिवा ह्विष्यमन्नमेकभक्तं भुक्त्वा ब्रह्मचारित्रतः अपरे-युरुपवासं कुर्वन् 'तपश्च तेजश्च' इत्यादि 'ब्रह्मणः पुत्राय नमः इत्येवमन्तं शतक्रत्वोऽष्टकृत्वश्चारएये जिपत्वा 'देवकृतस्य' इत्यादि 'अप्सु धौतस्य' इत्यतः प्राक् तथा जपेत् । ततः श्वोभूते 'पुनर्भा' इत्येताभ्यां ज तमव-गाह्य त्राह्मण्हयां नूचानस्याग्निमतो गृहात्तदलाभे यथा सम्भवं श्रौत-स्मार्त्तपरस्य गृहाद्ग्रिमाहृत्य प्रपदान्तं कृत्वा व्याहृतिभिर्हुत्वा भूपस्वा-हेति त्रिर्जुहुयात् ततो भुत्रस्वाहेति त्रिः। ततः स्वस्स्वाहेति त्रिः। ततश्च प्रतिमन्त्रं द्वादशकृत्वः। ततश्च प्रतिमन्त्रं त्रिष्कृत्वः। तत उत्थाय नमस्काराञ्जलिं कृत्वा 'ऋग्नि दृतं, ऋग्निर्मुर्गा. ऋग्नि-हितग्मेन, अग्ने रचाएः' इति चतुर्ऋचं जपेत्। अथोपविश्य 'अग्न श्रायाहि बीतये, श्रमिं वो वृधन्तं, नमस्ते श्रम्न श्रोजसे, उप त्वाडमे दिवेदिवे' इति चतमृभिराज्यं जुरुयात्। सोमं राजातं सैविष्टकृतं च। तत उपरिष्टाद्धोमादि । नात्र वध्वाऽन्वारम्भः, अग्निसंस्कारत्वात्। सर्वेषां अपदान्तानामंते वामदेवयगानम् तदृग्जपश्च । सायंत्रातर्होमाना-मंते यथासङ्खयं गौसूकाश्वसूक्तगानम् । श्रग्निधारणासम्भवे 'श्रयं ते योनिः' इति समित्समारोपणं 'या ते अग्ने' इत्यात्मसमारोपणं वा। उभयत्र लौकिकाग्नौ 'उ रावरोह्' इत्यवरोह्णम् । इदं सर्वं पुनराधानित्र-धावुक्तम्।

दिवा हविष्यभोजनादि देवकृतजपति समृत्युक्ताभ्यां कृच्छ्-चांद्रायणाभ्यां विकल्पते । एवं विनिवेशः—अकामकृते निमित्ते संधान-सम्भवे सत्यनुपेद्धायामिदं, उपेद्धायां तु कृच्छ्रः । कामकृते चांद्रायणम् । अत्रापरं मतं कृच्छ्चांद्रायणे त्रेताग्निविषये एव । गृह्याग्निनाशे पुन-राधानमित्युक्तम् । पुनराधानविधावत्रैव गृह्यसङ्ग्रहोपदेशः—

विच्छित्रेऽनुगते सद्यः प्राजापत्यांतपञ्चकम् । द्वादशाहातिपत्तौ चेत् इध्मपाहिप्रकीर्तितः ॥ प्राक्ततरशुद्धपाहि स्यात् त्रविङ्मासात्परं न तु । मासादृष्ट्वं यथाशास्त्रं पुनराधानमिष्यते ॥

श्रस्यार्थः गृह्याग्यनुगतौ मासादूर्ध्वं पुनराधानं, ततः प्राक् द्वादशाहादूर्ध्वं श्राज्यतत्रेण पाहित्रयोदशहोमः। ततः प्राक् स एव परि-चरणतंत्रेणेति। श्राज्यतंत्राणां प्रकृतिर्विवाहः। परिचरणतंत्राणां श्रौ-पासनहोमः। चक्तंत्राणां दर्शपूर्श्वमासौ । पशुतंत्राणां श्रष्टकापशुः

त्राज्यतंत्रे वरणस्याप्रवृत्तिः तस्य प्रदानार्थत्वात् । त्रर्थलोपात् श्रासवन-'समानयामुम्' इति मंत्रलिङ्गात् भर्वः सम्बंधार्थत्वादप्रवृत्तिः । लेखाचतु-र्थीहोमयोरिप न पुनरासवनम् कृतस्यैव सकलविवाहरोषत्वात् होमत्रयात्म-को विवाहः । वरण्वदुदकतेचनम् । उदकुम्भस्य मूर्ध्न्यवसेकार्थत्वाद-प्रवृत्तिः 'स्नातामहतेनाच्छाद्य' इत्यस्य । पु'सवनादौ पुनः प्रतिप्रसवाद-प्रवृत्तिः । 'सोमोऽददत्' इत्यस्य च वधूदानप्रकाशनार्थत्वात् 'प्रमे पति-यान' इत्यस्य च भर्व सम्बन्धार्थमार्गक्लुप्तिपरत्वादप्रवृत्तिः । लेखाच-तुर्थीहोमयोरिप न पुनः किया होमत्रयात्मकस्य मार्गस्यैकत्वात्। दृष-त्पुत्रस्य चाक्रमणार्थत्वादप्रवृत्तिः। शूर्पलाजानां च लाजहोमार्थत्वात्र निधानम् । आज्यतन्त्रेष्वन्वारम्भस्तु संस्कारकर्मधु संस्कार्येण कर्तव्य एव संस्कारार्थत्वात् नान्येषु । होमानामप्रवृत्तिः उपरिष्टाद्धोमात् वर्ज-यित्वा प्रधानत्वात् । भवतु वा व्याहृतिहोमानामङ्गत्वात् तथाऽपि दर्शपूर्ण-मासयोरप्येतत्प्रकृतित्वात् सर्वेषु प्राप्तानामुपघातादिसूचनम् । 'एवं चौ-लोपनयनगोदानेषु' इति च नियमार्थं भविष्यति । प्रयोगमध्ये नाज्यभा-गौ' इत्यादे स्सर्वार्थस्य विधानस्यैतत्प्रयोजनम्, कथं नामैतत् प्रागुक्ताना-मेवेतिकर्तव्यता वेन प्रदेशान्तरे प्रवृत्तिः न परस्तावद्वस्यमाणानां 'हुत्वोन पोत्तिष्ठते' इत्येवमादीनामपि । प्रकृतमनुसरामः ॥१४॥

भा०-जहां किसी कारण प्रायश्चित्त की श्रपेत्ता हो-वहां २ प्राय-श्चित्तीय त्राहुतियां करे ॥ १४॥

हुत्वोपांत्तिष्ठतः ॥ १६ ॥

व्याहृतिभिद्गु त्वा उपांश्रष्टी जायापती सहोत्तिष्ठतो वध्वा दक्तिणं पाणि दक्तिणेन पाणिना गृहन् पतिरुत्तिष्ठत् तस्याः ऋस्वातन्ज्यात्। हुत्वेति समानकर् कत्वं होमेऽप्युपश्लेपार्थम् । ऋतोऽन्वारव्यायामेव होमः । न च पूर्ववद्त्रान्वारम्भः पतिपाणेहोंमे व्याप्टतत्वात् ॥ १६॥

भा०-महा व्याहृति होम के बाद वर बधू दोनों एक साथ उठें। अर्थात् उठते समय वर के दिहने हाथ कन्या के पीठ पर होकर दिहने कन्धे पर और कन्या के वार्यें हाथ, वर के पीठ पर होकर वार्यें कन्धे पर रहे।। १६॥

## अनुपृष्ठं गत्वा दक्षिणतोऽवस्याय वध्वञ्जलि गृह्वीयात्।१७।

अनु सादृश्ये । उत्थानवत्पाणि गृह्णजेव तस्याः पृष्ठदेशेन गत्वा दृक्तिणतो दर्भेषु स्थित्वा तस्याः आकोशमञ्जलिमुभाभ्यां हस्ताभ्यामुपा-दृद्यात् स्वीकुर्यात् ॥ १७॥

भा॰-पति, बहू के पीठ की श्रोर होकर दहिने श्रोर चलकर उसकी श्रञ्जलि पकड़ कर उत्तर मुंह हो बैठे।। १७॥

## पूर्वा माता श्रमीपलाशमिश्रान् लाजाञ्छूपे कृत्वा ॥१८॥

पश्चादुद्वाहवचनात्, वध्यृहं गत्वा विवाह इति वध्यातुस्सन्नि-धानात्, सा पूर्वमेव लोजात् स्वयमुत्पाद्य शम्या पलाशेन वा संसृष्टात् शमीपर्णमिश्रात् वा तात् विहंषि शूपें निधाय तिष्ठति । तदानीं शूपेंणा-दायाग्नेः पुरस्ताद्वधूमाता तिष्ठेत् । एवं सूत्रयोजना—लाजात् कृत्वा शूपें निहिताक्श्रमीपलाशमिश्रानादाय पूर्वा पूर्वेदिकसम्बन्धिनी वधूमाता तिष्ठेदिति ॥ १८ ॥

भां०-कन्या की माता या भाई शमी पलाश (पत्ता) मिला लावा शूप में लेकर अग्नि के पूर्व भाग में (खड़ी या) खड़ा रहे।।१८

पश्चादग्नेर्र्षरपुत्रमाक्रमयेद्वधूं दक्षियोन प्रपदेन इमम-श्मानमिति ॥ १९ ॥

पश्चाद्मेः स्थितं तं दृषत्पुत्रं सन्येन पाणिना अञ्जलि गृह्णनेवं दिल्लिणेन पाणिना दिल्लिणमूरुं गृहीत्वोत्त्रित्यांगुलिमूलेन स्वयं मन्त्रमुक्त्वाऽऽक्रमयेत्। सिन्नधानात्सिद्धे दिल्लिणेनेति प्रागुदीचीमुत्क्रम-येदित्यत्रापि दिल्लिणिनयमार्थम् ॥ १६॥

भा०-त्रौर त्राग्नि के पश्चिम भाग में रक्खा हुत्रा शीलवट की वार्ये हाथ से त्रज्ञित को पकड़े हुये दहिने हाथ से दहिने पैर को शील वट पर चढ़ावे त्रौर पूर्व से ईशान कोण में चलावे त्रौर पति उस समय "इममश्मानमारोहाश्मेवत्वछृत्थिशाभव० हत्यादि मन्त्र पढ़ता जावे।। १६।।

## सक्रद्वगृहीतभञ्जिलं लाजानां वय्त्रञ्जलातावपेत् स्राता ॥२०॥

वथूस्राता, वध्वञ्जलाविति वध्वास्सन्निधानात्। शमीपलाशिम-श्राणामञ्जलिम् ॥ २०॥

भा०-श्रौर बहू का भाई वहू की श्रक्षित में एक श्रक्षित लावा लेकर एक ही वार में देवे ॥ २०॥

सुहद्रा कश्चित्।। २१॥

भ्रातुरलाभे वध्वा हितैपी कश्चित्पुरुषः अविषेत् । सुहृद्वेति सिद्धे कश्चिदिति पुरुषनियमार्थम् ॥ २१ ॥

भा०-यदि उसका भाई न हो तो कोई सुहृत् देवे ॥ २१ ॥

तं साञनौ जुहुयादिविच्छद्याञ्जलि इयं नागीति ॥ २२ ॥

प्रकृतत्वात्सिद्धे तिमिति तमेव लाजाञ्जलि जुहुयात् उपस्तरणा-भिधारणे न कुर्यादित्येवमर्थः अन्यथा हि होमद्रःये दर्शनात् राङ्का स्यात् । सेति सा वध्ः जुहुयादेव न मन्त्रं वृयात् पतिरेव मन्त्रं वृयादित्येवमर्थम् । अप्नाविति प्रभूतेऽग्नावित्येवमर्थम् । पाण्योरिवच्छेदं कुर्वती वधूरंगुल्यप्रेण जुहुयात् । हपत्पुत्राक्रमणादूर्ध्यमञ्जलि गृह्वीयादेव पतिः ॥ २२ ॥

भा०-उस भाई या सुहृत की दी हुई लावा की ऋक्षित को पूर्व उपदेशानुसार उपग्तीर्गाभिवारित कर ऋक्षिति ऋलग २ न हो ज वे। इस प्रकार सावधानी से वधू ऋग्नि में ऋाहुति देवे ऋौर पित "इयं नारी०" इत्यादि मन्त्र जपे॥ २२॥

त्रर्यमणं पूपणित्युत्तरयोः ॥ २३ ॥ उत्तरयोर्लाजहोमयोरिमौ मन्त्रौ ॥ २३ ॥

हुते तेनैव गस्वा प्रदक्षिणमग्नि परिणयेत् कन्यता पितृभ्य इति ॥ २४ ॥

इयं नारीति हुते येनेव प्रकारेण दक्षिणतो गतस्तेनैव प्रकारेण

पाणि गृह्वजनुषृष्ठमुत्तरतो गत्वा पाणि गृह्वज्ञेव अप्नि प्रद्तिणीकुर्वन् वधूमनुगमयेत्। आज्यस्रुवसूर्पदृपत्पुत्राणां प्रद्तिणेऽन्तर्भावः। मातृब्रह्मोदकुम्भकानां विद्यमीवः। पतिर्मन्त्रं त्रृ्यात्।। २४।।

श्चवस्थानप्रभृत्येवं त्रिः ॥ २५ ॥

मध्यमायामावृत्तौ अर्थमण्मिति लाजहोममन्त्रः। उत्तमायां पूपण्मिति । इतरत्समानम् ॥ २४ ॥

भा०-इस प्रकार आहुति देने पर वेद्झ ब्राह्मण पित ने जिस
प्रकार गमन किया था उसी प्रकार अर्थात् कन्या को आगे २ लेकर
अग्नि की प्रविद्मणा कराते हुये फिर आकर "कन्यलापित्रभ्यः" इस
मन्त्र का पाठ करके उस कन्या को परिणीता करे। अर्थात् कन्या जो
पित लोक पाती है यह उने समका देवे। इस प्रकार बहू परिणीता होने
पर और भी दो वार उसी प्रकार अवस्थान, अश्मारोहण, मंत्र पाठ,
लाजावपन, और लाजा होम करे परंतु इन दोनों होम में पूर्व मंत्रों को
न पढ़े। उसके बदले में "अर्थमणंतुदेवं०" एवं "पूषणं०" इन दो मंत्रों
का पाठ यथाकम करे॥ २३॥ २४॥ २४॥

शूर्पेण शिष्टानग्नावोप्य प्रागुदीची ग्रुत्क्रमयेत् एकि मिष्

प्रकृतत्वासिद्धे ऽप्रावित्यग्नौ यत्कृत्यं तत्सवं तत्रैव समापनीयम् । प्रागुदीचीमुत्कम्येदित्यस्य च गमनोपक्रमत्वात् न प्रत्यावृत्य समाप्तिः रिति केचित् । तद्युक्तम् — अप्नावित्यनुक्तेऽप्यन्यत्राप्यहोमत्वाल्लाजप्रज्ञेन् पप्रसङ्गात् 'अपरेणाग्निमौद्कः' इतिवचनाद्ग्न्यर्थमवश्यंभावित्वाच्च प्रत्यागमनस्य च ल्यपा क्रमन्य द्योतितत्वात् । उत्क्रमणं द्वत्पुत्राक्रम- एवत् प्रतिमन्त्रम् । सप्त पदानि । सखी सप्तपदीति वधूमीज्ञमाणो ज्ञपेत् , मन्त्रलिङ्गात् ॥ २६ ॥

भा०-तीन वार होम करने से बचा हुआ लावा आदि को सूप में लेकर विना मंत्र पढ़े अग्नि में डाले और ईशान कोण्में "एकमिषे०" प्रभृति ६ मंत्रों को पढ़ २ कर वहू को यथा क्रम से सांत पग इस भाँति चलावे जिसमें बहू का दिहना पग आगे २ को चले और वायां पीछे २ और बाँया पग दिहने पग में ठेक न जाया करे॥ २६॥

ईशका वेश्व एया गेहण दुर्गा तुमन्त्र णान्य भिरूपाभि: ॥२०॥ वधूं द्रष्टुमागताः सुमङ्गली श्वियो वी समाणः 'सुमङ्गलीः' इति जपेत्। 'सुकिंशु रुप्' इति वधूं रथमारोहयेत्। अध्वनि मयस्थाने 'मा विद् ' इति जपेत्। सुमङ्गलीरित्य स्यानागताभ्यां सह निर्देशः तत्साम्यार्थम् । यथा महत्यध्वनि रथारोहण्य बहुत्वे भयस्थान बहुत्वे च तयोरा हितः दृष्टार्थं वात् तथाऽस्यापि स्त्रयागमना श्वतावाविवाह समाप्ते-राष्ट्रिति ॥ २०॥ ईत्तका वेसणानन्तरमाह—

भा०-ई त्तकों (बहू को देखने के लिये आये हुये व्यक्ति) की देखना, बहू का पित गृह जाने के लिये रथ पर चढ़ना, मार्ग में भय होना आदि के अभिक्रप मंत्रों को पढ़े। जैसे देखने बाले "सुमङ्गली" इत्यादि मंत्र को जप करें, "सुिकंशुकम्" मंत्र बहू को रथ पर चढ़ाते समय पढ़े, मार्ग में जहां भय हो वहाँ भा विदन्त आदि मंत्र पढ़े।। २७॥

अपरेणाग्निमौदको गत्वा पाणिग्राहं मूर्धन्यवसिश्चेत् ।२८। ज्ञह्याग्न्योरन्तरेण गत्वा ॥ २८॥

वधूं च॥ २९॥

क्रमेणावसेकः॥ २६॥

समञ्जनित्वत्यवसिक्तः ॥ ३० ॥

जपेत् पतिः ॥ ३० ॥

भा०-इसके बाद कोई जल वाहक व्यक्ति ऋगिन के पश्चिम भाग में आकर विवाह के लिये तैयार वर और कन्या के माथे पर जल ढालकर स्नान करावे और उसी समय वर बध् एक वाक्य से "समझन्तु०" मंत्र पहें।। २८।। २०॥

दक्षिणं पाणि साङ्गुष्ठं गृह्वीयात् गृभ्णामि ते इति पड्भिः ॥ ३१ ॥ उत्तरोत्तरेण मन्त्रेणोत्तरोत्तरमभिपीडनन् । अथ प्रदक्षिणमिन प्रत्यागम्य उपरिष्टाद्वोमादि वामदेव्यनानान्तं कुर्यात् यथा दर्शपूर्णमास-योर्वदयते । नात्रान्वारम्भः ॥ ३१ ॥

इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमस्य तृतीयः खण्डः ॥ १।३॥

भा॰-पति, उस जलां सक्त वहूं की श्रञ्जलि को वायें हाथ से पकड़ कर श्रपने पास कुछ ऊपर लेकर दहिने हाथ से उसके श्रंगूठा सहित उत्तान दहिना हाथ (हाथ के पहुंचे से श्रंगुलि तक) पकड़ कर 'गृश्णामिते॰ इत्यादि विवाह के ६ मंत्रों को पढ़े।। श्रोर श्रीन की प्रदिश्णा कम से घूमकर होम करके वासदेग्यगान तक सब कियायें करे।। ३१॥

इति खादिरगृद्ध सूत्र के प्रथम पटल के तीसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ।। १॥३॥

प्रागुदीचीमुद्रहेत्॥ १॥

होमानन्तरमेव प्रागुदीचों दिशं वधूमिंग्न च प्रापयेत्पतिः। १। भा०-होम के पश्चात् ही ईशान कोण में वहू और स्थापनार्थ अग्नि को पहुंचाये॥ १॥

ब्राह्मणकुत्तेऽग्निमुपसमाधाय पश्चादग्नेर्लोहितं चर्मानडुह-मुत्तरत्नोम प्राग्गीवमास्तीर्य वाग्यतामुपवेशयेत् ॥ २ ॥

विवाहगृहे गृहान्तरे वा। यदि चत्रियादिगृहे विवाहः तदा स्वन्यस्मिन्नेव ब्राह्मण्डुले अग्न्युपसमाधानान्तं कृत्वा चर्मणि वधूसुप-वेशयेत् पतिरस्तमयकाले। नात्र वध्वा दर्भासनं तत्कार्यकरणत्वा-ज्वर्मणः॥२॥

भाश-यदि चत्रियादि के घर विवाह हो और उपका अपना घर दूर हो तो पास ही ईशान कोए में फिर किसी ब्राह्मए के घर में उत्तर विवाह (चतुर्थी कर्म) करने के लिये अग्नि स्थापन करे॥ और उस स्थापित अग्नि के पश्चिम भाग में लाल रंग का गौ के चर्म को लेकर इस प्रकार विद्यावे कि जिसमें चमड़े का रोम ऊपर को हो और पूर्व

पश्चिम लम्बा हो चमड़े का शिरोभाग पूर्व की स्रोर हो स्त्रौर इसके नीचे का हिस्सा भूमि पर हो। उस विद्याये हुये गोचर्म पर बहू को नियमित वाक्य (श्रातिरिक्त वातें न करे) बैठावे ॥ २॥

मोक्ते नक्षत्रेऽन्वारव्धायां सुवेशोपघातं जुहुयात् षड्भिर्से-खानभृतिभिस्सम्पातानवनयन् मूर्धनि वध्वाः ॥ ३ ॥

अन्येनोदितानि नत्तत्राणीत्युक्ते । अत एवोपर्याच्छादिते देशे होमः। प्रशब्दः प्रथमोदयार्थः। परिसमूह्नादीनि कृत्वा व्याहृतिमि-स्तमस्ताभिश्च हुत्वा लेखादिभिस्त्वाहाकारान्तेर्जुहुयात् । प्रभृतितस्सिद्ध अन्वारव्यायामित्येतत् प्रकृतिसादृश्यार्थत्वात् उपवेशनवत् पत्युरेवालम्भ प्रयोक्तृत्वार्थम् । इतरथा पित्रादेसयान । स्रुवेखेति स्रुवेख सम्पातावन-यनार्थं, इतरथा दिन्ना पाणिना स्यात् । उपघातिमति प्रत्युपघातं व्याहृतिहोमेष्विप सम्पातावनयनार्थम् । उपघातिमत्याभीच्यये गामुल् । एतत्त्रितयमपि न्यायसूचनपरमेव । तथाहि - आद्ये होमे न पितृत्वम-न्वारम्भप्रयोक्तृत्वे कारणं, कि तर्हि ? तस्याः पित्रधीनता । 'वाल्ये पितृवशे तिष्ठेत्' इति वचनात् पित्रधीनत्वम् । सा त्विदानीं अर्त्रधीना 'पाणिप्राहरय यौवने' इति वचनात् । न्यायपरत्वात् सूत्रस्य, न्यायस्य च तुल्यत्वात् । चतुर्थीहोमेऽि भर्तुरेव प्रयोक्तुत्वम् । उपनयनादिपु चाचार्यस्य । सम्पातानामि स्रुवगतत्वेन साधनान्तरप्रयुक्ति चयात्ते-वावनयनम् । त्र्यत एव चतुर्थाहोमेऽपि तथैव । तथा दशानां होमानां संस्कारार्थत्वात् संस्कारस्य सम्पातावनयनद्वारत्वात् दशस्वप्यवनयनम् । श्रत एव चतुर्थीहोमेऽिष नवस्वासवनद्वारत्वात् हुत्वा हुत्वा सम्पाता-ननयनं होमावशिष्टे संपातप्रसिद्धेः॥ ३॥

भा०-यदि मेघादि के कारण नत्तत्र गण न दीख पहें तो प्राज्ञ ज्योतिषी के बतलाये हुये नत्त्रत्रोदय काल में "लेखा सन्धिषु०" इत्यादि छः मन्त्रों से बहू को अन्वारब्ध कर स्नुवा से उपघात छः आहुतियाँ देवे और उन प्रत्येक छः आहुतियों के अन्त में वधू के माथे पर घी का ढार देवे ॥ ३॥

मदक्षिणमन्नि परिक्रम्य श्रुवं दर्शयति श्रुवाद्यौरिति ॥४॥ पत्युमेन्त्रः॥ ४॥

भा०-होम के पश्चात वर वधू आग्ने की प्रदक्षिणा करते हुये मण्डप से वाहर निकल कर पति बहू को "प्रुवागौ०" मन्त्र पढ़कर प्रुव नक्त्र को दिखलावे॥ ४॥

अभिवाद्य गुरून् गोत्रेण विसृजेद्वाचम् ॥ ४ ॥

काश्यपगोत्रोऽहमभिदादये इतिवत् स्वगोत्रमुक्त्वाऽभिवाद्य वधूर्वाङ्नियमं त्यजेत्। नावश्यं वदेत्। अथोपरिष्टाद्धोमादि वामदेञ्य-गानान्तं कुर्यात्॥ ४॥ तत आह

भा०-और बधू श्रम्पने पित का गोत्र के साथ अपना नाम लेकर पित को श्रभिवादन करे और जो नियमित बोलने का नियम था उसे छोड़ देवे ॥ ४॥

गौर्दक्षिणा ॥ ६ ॥

होमत्रयार्थमस्मिन् काले त्रहाएँ देया। त्रात एव त्रिष्वपि होमेषु एक एव त्रहा।। ६॥

भा०-इस विवाह यज्ञ में त्राह्मण को एक गौ द्त्तिणा में देवे।।६ स्रत्रार्ह्यम् ॥ ७॥

अस्मिन् काले विवाहकत्रे तज्ज्ञातिभ्यश्च वध्वाः प्रदाताऽध्यै द्यात्। तस्य विधिर्मन्त्रकमानुसारेण, ४।४। ४ मधुपके प्रतिग्रहीष्यन् इत्यारभ्य वस्यते॥ ७॥

भा०-इस समय विवाह करने वाले, और श्रपनी जाति वालों के लिये कन्यादाता श्रद्ये देवे॥ ७॥

श्रागतेष्वत्येके ॥ ८॥

यदा विवाहार्थं वध्वा गृहसागताः तदेत्यर्थः ॥ ८॥

भा0-किन्हीं आचारों का मत है कि विवाह के लिये बहू के घर जब आवें तब अर्घ्य देवे ॥ = ॥

त्रिरात्रं क्षारत्ववणे दुग्धमिति वर्जयानी सह शय्यातां असचारिणो ॥ ९ ॥

होमादृर्ध्वं नियमः तिह्नप्रभृति त्रिरात्रम् । दुग्धमुद्धृतसारं पि-एयाकादि । सह एकस्यां राय्यायां रात्रिषु शयीयातां ब्रह्मचारिए। निवृ-त्तमैथुनो परस्परमन्यतश्च । इतिशब्दोऽन्यस्यापि त्रतिवरोधिनो वर्जनार्थः ॥ ६॥

भा०-जिस दिन पहिले विवाह कार्य में प्रवृत्त हो उस दिन से तीन रात्रि तक ज्ञार लवण और दूध को छोड़कर केवल हविष्य अन्न भोजन करते हुये मैथुन रहित हो एक शय्या पर शयन करें ॥ ६॥

इतिष्यमञ्ज परिजप्याञ्चपात्रेनेत्यसाविति वध्वा नाम ब्रयात् ।१०।

त्रिरात्रं भोजनकालेष्वाहृतमन्त्रमभिमृशन् जिपत्वा ॥ १०॥

भां -तीन त्रहोरात्र जो वर बहू को हविष्यात्रा भोजन करना पड़ेगा उसका नियम यह है कि जब खाने के लिये हविष्यात्र लाया जावे तो "अन्तपान मिणना" मंत्र का जप करके "यह है" ऐसा कह कर बहू का नाम पति बोले ॥ १०॥

भुक्योच्छिष्टं वध्ये दद्यात् । ११ ।

सा चाश्रीयात्। लेखाहोमं समाप्य वधूं, 'सुकिंशुकम्'इति रथमा-रोप्य ऋगिंत च गृहीत्वा भयस्थाने 'मा विदन्'इति जिपत्वा स्वगृहं प्रविश्य 'इह गावः' इति जिपत्वा शय्यायामुपविश्य वधूमीक्तमाणः 'इह धृतिः' इति जेपेत् मन्त्रलिङ्गात्। तत्र श्रिरात्र सह शयीयाताम्॥११।।तत आह-

भा०-श्रीर भोजन करने से जो उच्छिष्ट बच जावे उसे बहू को देवे श्रीर बहू उसको खा जावे। लेखा होम समाप्त कर बहू को "सुकि-शुकम्" यह पढ़कर रथ पर चढ़ावे श्रीर श्रीप्त को श्रपने साथ ले लेवे भागे में जहां किसी प्रकार का भय हो वहाँ "भाविद्न" मंत्र को जप कर श्रपने घर में प्रवेश कर "इह गावः" मंत्र को पढ़कर शब्या पर बैठकर बहू को देखता हुआ "इह धृतिः" मंत्र को पढ़े श्रीर उसी एक श्रासन पर तीन रात्रि तक मैथुन रहित शयन करे।। ११!!

जर्ध्वं त्रिरात्राचतसृभिराज्यं जुहुयात् अग्ने पायश्चिति-रिति समस्तपश्चर्यां सम्पातानवनयगुद्गात्रे ॥ १२:॥ चतुर्थेऽह्नि पूर्वाह्वे प्रपदोन्तं कृत्वाऽन्वारव्धायां महाज्याह्व-तिभिः समस्तान्ताभिर्ह्त्वा 'अग्ने प्रायश्चित्तिः' इत्यादिभिः स्वाहाकारा-न्तेर्जुहुयात् । नव सम्पाताः । महत्यध्वन्यर्थोदुत्कर्षः सहशयनस्य । हविष्यमन्नमित्यस्य प्रकृतत्वात्तद्व्युदासार्थमाज्यमित्युक्तम् । उदकपूर्णं पात्रं स्वानाय पर्याप्तं स्यात् ॥ १२ ॥

भा०-इसके वाद चौथे दिन, दिन के पहिले भाग में "प्रपदान्त"
तक के सारे विधि को वहू को अन्वारव्य होकर महाव्याहृतियों से तीन
आहुतियां और सारी महाव्याहृति से चौथी वार होम कर "अग्ने
प्रायश्चित्तःः" मंत्रों में स्वाहा जोड़कर उनसे आहुतियां देवे उनमें से
दूसरी आदि आहुति में इस मंत्रस्थ अग्नि के वदले. "वायु" "चन्द्र"
और "सूर्य" को पढ़े यही इसमें विशेषता है और पांचवीं आहुति में
'अग्नि', 'वायु', 'चन्द्र' और 'सूर्य'इन्हीं चार देवताओं को एक काल
में सम्बोधन करे, सुतराँ मन्त्रों में जितने एक वचन हैं, उन सब को
बहु वचन करके पढ़े। इन पाँच प्रायश्चित्त आहुतियों की प्रत्येक आहुति
के अन्त में घो के धारणापात क्रम से चमसे में से रिचत रक्खे। ।१२॥

तेनैनां सकेशनखामाप्तावयेत् ॥ १३ ॥

सहिशारसं पतिरस्वयमेव स्नापयेत् । ततो वामदेव्यगानान्तं कृत्वा बाह्यणार् भोजयेत् ॥ १३ ॥

भा०-साथ में लाये हुये जल से वहू को स्वयं पित शिर सिहत स्तान करावे । श्रीर वामदेवय तक गान करके त्राह्मणों को भोजन हरावे ॥ १३ ॥

ततो यथार्थं स्यात् १४

न प्रतिहोमं साध्यभेदायत्तं याथार्थ्यं, किन्त्वेकसाध्यमेवेदं होमत्र-शत्मकमनुष्ठानमित्येवमर्थम् ॥ १४ ॥

भांश्नतंत्र प्रयोजनानुंसार जो २ कार्य हो वर वधू करें ॥१४॥ ऋतुकाले दक्षिणेन पाणिनोपस्यमालभेद्विष्णुर्योनि कल्प-यत्विति समाप्तायाम् । १५ ।

'दायादिरग्निः' इत्यस्यापि पत्तस्याभ्युपगमं दर्शयितुमौपासमहोम मनुक्रवेद्युक्तप्।। स्जोदर्शनप्रभृति घोडशरात्रं ऋतुकालः। यदि राज्यास्तृतीये भागे रजस्त्यात् तदोत्तरमेवाहर्विद्यात् चतुर्थे भाग इति केचित्। समाप्तायामिति सम्यगवस्थायां प्राप्तायां वध्वामित्यर्थः। काऽसाववस्था।

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्द्या एकाद्शी च या। त्रयोदशी च शेपास्तु प्रशस्ता दशरात्रयः॥ युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु॥ एवमादिसूचिता॥१४॥

सम्भवेद्गर्भं धेहीति ॥ १६ ॥

सम्यगालोच्य मुहूर्तादि मिथुनीभवेत्।। १६॥

इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमत्य चतुर्थः खरहः ॥ १ । ४ ॥

मा०-जिस दिन (या रात्रि) में स्त्री को मासिकधर्म आरम्भ हो उसमें १६ रात्रि तक ऋतु काल होता है परन्तु उनमें आरम्भ से ४ रात्रि निन्दा काल है, और एकादशी और त्रयोदशी संगम करने में प्रतिषिद्ध हैं वाकी १० रात्रि शुद्ध होती हैं इनमें से जिसकी पुत्र की इच्छा हो वह जोड़े तिथियों (द्वितीया, चतुर्थी आदि) में और जिस को कन्या की इच्छा हो वह विषम (परवा, वृतीया आदि) तिथियों में वहू के पास सम्प्रयोग के लिये जावे। अर्थात् ऋतुकाल में पित पिहले "विष्णुर्योनि" कल्पयतु०" ऋचा और "गर्भ धेहि सिनीवालि०' मंत्रों को पढ़ कर अपने दिहने हाथ से बहू के उपस्थ (योनि) को अभिमर्श कर तब संगम करे॥ १४॥ १६॥

इति खादिरगृह्यसूत्र के पहिले पटल के चौथे खरह का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ १॥ ४॥

यस्मित्रानी पाणि गृह्वीयात्स गृह्यः ॥ १ ॥

पाणि गृह्णीयादिति विवाहकरणं लद्यते। व्यवहारार्था हि संज्ञा। एवं चेद्विवाहादनु निष्पादितत्वात् गृह्यत्वस्य विवाहावस्थायां गृह्यत्वाभावात् ब्रह्मा न स्यात्। न, 'गौर्द् चिणा' इति लिङ्गात्॥ १॥

भा०-जिस अग्नि में विवाह कार्य सम्पन्न हो उसी को 'गृह्य'

कहते हैं।। १।।

## यस्मिन्दाञ्न्त्यां सिवधमाद्ध्यात् ॥ २ ॥

यस्मिन्नमौ ब्रह्मचार्यन्त्यां सिमधमाद्ध्यात् स वा गृह्यः । श्रह्मि-न्पन्ने तु तत्प्रभृति सायंप्रातर्होमादीनि स्युः । गृह्य एव च विवाहः ॥२॥ भा०-या जिस श्राग्न में ब्रह्मचारी का समावर्तान संस्कार हो

उसको 'गृह्य' कहते हैं ॥ २॥

निर्मन्थ्यो वा पुरायस्सोऽनर्धुकः ॥ ३ ॥

उक्तस्यैव प्रकारद्वयस्योत्पित्तिनयमोऽयं, न गृह्यान्तरम् । वाशव्द-रशास्त्रान्तरोक्तस्यापि श्रोत्रियागारादेस्संप्रहणार्थः । पुण्यः परलोक हितकरः । श्रनर्धुकः इह जन्मनि ऋद्धस्यभावकरः ॥ ३ ॥

भा०-पूर्वोक्त दो प्रकार के ऋग्नि ऋरिए काष्ट द्वारा मथ कर जो उत्पन्न किया जाता है वह परलोक में हितकर होता है। ऋौर इस लोक में सम्पत्ति नहीं होती है।। ३॥

अम्बरीषाद्वाऽऽनयेत् ॥ ४ ॥

अपूपविक्रयार्थाद्ग्नेर्वा ॥ ४ ॥

भा०-या भर भूजा (हलवाई) के घर से अग्नि लावे ॥ ४॥ वहुयाजिनो वाऽगाराच्छूदवर्जम् ॥ ५॥

बहुदेवपूजकस्य बहुदातुर्वा गृहादानयेदम्नि विवाहं कर्तुमन्त्यां समिधं वाऽऽघातुम्॥ ४॥

भा०-या बहुत देवता पूजने या यज्ञ करने वाले के घर से अगिन लावे (शुद्ध के घर से नहीं) और इसी अगिन में विवाह करे या स-मिदाधान करे॥ ४॥

## सायमाहुत्युपक्रमं परिचरणम् । ६ ।

चतुर्थीहोमानन्तरं यस्सायंकालः तमारभ्याजीवनपरिसमाप्तेः आऽऽश्रमपरिसमाप्तेः आऽऽधोनकालाद्वा चरणं अनुष्ठानं कुर्यात् परीत्यधिकारेक्यं सूचितम् । अतो नान्तरा ब्राह्मणभोजनम् । अन्त्यां समिधं, दांयादिर्वा इत्यनयोरिप पच्चयोस्सायमाहुत्युपक्रममेव ॥ ६॥

भा॰-उस दिन की प्रातः कालिक आहति उस प्रकार सिद्ध हो

चुकने पर इसके अनन्तर सामान्यतः सब दिन के लिये ही इसी गृह्य अग्नि में साथं और प्रातःकाल होम कहा गया समको ॥ ६।।

प्रागस्तमयोदयाभ्यां प्रादुष्क्रत्य । ७ । श्रक्षतमयोदयात् प्राक् समीपकाले प्रज्वाल्य ॥ ७ ॥ श्रक्तिमते होमः । ८ ।

अस्तमयानन्तरमेव होमः॥ ८॥

उदिते चानुदिते वा ॥ ९ ॥

सन्ध्यायामेव ॥ ६॥

भा० सूर्यास्त से पहिले सार्यकाल और सूर्योद्य से पहिले प्रातःकाल में अग्नि को भलीभांति प्रज्वलित कर सूर्योदय के पीछे या सूर्य उदय हो रहा हो ऐसे समय उसमें आहुति प्रदान करे ॥७॥८॥६॥

हिवष्यस्यात्रस्याकृतं चेत् प्रक्षास्य जुहुयात्पाणिना ।१०।

हविष्यस्यात्रस्य मापवरकादिद्रव्यव्यतिरिक्तस्य लवणाद्यसं-युक्तस्य येषुकेषुचिद्धोमेषु साधनतया श्रुतस्यौदनस्य षष्ठीनिर्देशात्तदेकदे-शस्य साधनतयोपादानम् । न पकावस्थस्य कृत्स्नस्योपादानम् । ऋतः पाकधर्मा न स्युः । इतरथा शङ्का स्यात् , दर्शपूर्णमासादौ दर्शनात् । ऋतं ऋपकं उक्तजातीयानेव तण्डुलांखिः प्रचाल्यांगुष्ठपर्वमात्रप्रमा-णामादुतिं जुद्वयात् । होमसामान्यात् स्नुवस्य प्राप्तौ पाणेविधानम् १०

भा०-तराडुल या फलादि ही हवनीय हो तो उन सबको अन्छे प्रकार धोकर जल भीगे ही दशा में हाथ से हवन करे॥ १८॥

दिथ चेत्पयो वा कंसेन । ११

चेदिति सिद्धबद्धधपदेशः शास्त्रान्तरविहितस्यापि द्रव्यस्य संमह्णार्थः । श्रतः श्राज्यमपि द्रव्यम् । पृथग्मह्णमितरेतरसंयोगव्यु-दासार्थम् ॥ ११ ॥

चरुस्याल्या वा । १२ कंसेन विकल्पः ॥ १२ ॥

## यस्मिन्त्राऽन्त्यां समिधमाद्ध्यात् ॥ २ ॥

यस्मित्रप्रौ ब्रह्मचार्यन्त्यां समिधमाद्ध्यात् स वा गृह्यः । श्रह्मि-न्पत्ते तु तत्प्रभृति सायंप्रातर्होमादीनि स्युः । गृह्य एव च विवाहः ॥२॥

भा०-या जिस अग्नि में ब्रह्मचारी का समावर्त न संस्कार हो उसको 'गृह्य' कहते हैं।। २।।

## निर्मन्थ्यो वा पुरायस्सोऽनर्धुकः ॥ ३ ॥

उक्तस्यैव प्रकारद्वयस्योत्पित्तिनयमोऽयं, न गृह्यान्तरम् । वाशव्द-रशास्त्रान्तरोक्तस्यापि श्रोत्रियागारादेस्तंत्रहणार्थः । पुरयः परलोक हितकरः । श्रनर्धुकः इह जन्मनि ऋद्धस्यभावकरः ॥ ३ ॥

भा०-पूर्वोक्त दो प्रकार के ऋग्नि ऋरिए काष्ट द्वारा भथ कर जो उत्पन्न किया जाता है वह परलोक में हितकर होता है। ऋौर इस लोक में सम्पत्ति नहीं होती है॥ ३॥

अम्बरीषाद्वाऽऽनयेत्॥ ४॥

अपूपविकयार्थाद्ग्नेर्वा ॥ ४ ॥

भा०-या भर भूजा ( हलवाई ) के घर से अग्नि लावे ॥ ४ ॥ वहुयाजिनो वाऽगाराच्छूदवर्जम् ॥ ५ ॥

बहुदेवपूजकस्य बहुदातुर्वा गृहादानयेद्गिंन विवाहं कर्तुमन्त्यां समिधं वाऽऽघातुम्॥ ४॥

भा०-या बहुत देवता पूजने या यज्ञ करने वाले के घर से अग्नि लावे (शूद्र के घर से नहीं) और इसी अग्नि में विवाह करे या स-मिदाधान करे॥ ४॥

# सायमाहुत्युपक्रमं परिचरणम् । ६ ।

चतुर्थीहोमानन्तरं यस्सायंकालः तमारभ्याजीवनपरिसमाप्तेः श्राऽऽश्रमपरिसमाप्तेः श्राऽऽधोनकालाद्वा चरणं श्रनुष्टानं कुर्यात् परीत्यधिकारैक्यं सूचितम् । श्रतो नान्तरा ब्राह्मणभोजनम् । श्रन्त्यां समिधं, दांयादिवी इत्यनयोरिप पच्चयोरसायमाहुत्युपक्रममेव ॥ ६॥

भा०-उस दिन की प्रातः कालिक आहति उस प्रकार सिद्ध हो

चुकने पर इसके अनन्तर सामान्यतः सब दिन के लिये ही इसी गृह्य अग्नि में साथं और प्रातःकाल होम कहा गया समको ॥ ६।।

प्रागस्तमयोदयाभ्यां प्राद्धकृत्य । ७। श्रास्तमयोदयात् प्राक् समीपकाले प्रज्वाल्य ॥ ७॥

अस्तिमिते होमः । ८ ।

अस्तमयानन्तरमेव होमः॥ ८॥

उदिते चातुदिते वा ॥ ९ ॥

सन्ध्यायामेव ॥ ६॥

भा० सूर्यास्त से पहिले सार्यकाल और सूर्योदय से पहिले प्रातःकाल में अग्नि को भलीभांति प्रव्वित कर सूर्योदय के पीछे या सूर्य उदय हो रहा हो ऐसे समय उसमें आहुति प्रदान करे ॥७॥८॥६॥

हिनष्यस्यात्रस्याकृतं चेत् प्रसाल्य जुहुयात्पाणिना ।१०।

हविष्यस्यात्रस्य मापवरकादिद्रव्यव्यतिरिक्तस्य लवणाद्यसं-युक्तस्य येषुकेषुचिद्धोमेषु साधनतया श्रुतस्यौदनस्य षष्ठीनिर्देशात्तदेकदे-शस्य साधनतयोपादानम् । न पकावस्थस्य कृत्स्नस्योपादानम् । अतः पाकधर्मा न स्युः । इतरथा शङ्का स्यात् , दर्शपूर्णमासादौ दर्शनात् । अकृतं अपकं उक्तजातीयानेव तण्डुलांखिः प्रचाल्यांगुष्ठपर्वमात्रप्रमा-णामाद्वतिं जुद्दुयात् । होमसामान्यात् स्नुवस्य-प्राप्तौ पाणेविधानम् १०

भा०-तराडुल या फलादि ही हवनीय हो तो उन सबको अच्छे प्रकार धोकर जल भीगे ही दशा में हाथ से हवन करे॥ १८॥

दिध चेत्पयो वा कंसेन । ११

चेदिति सिद्धवद्वधपदेशः शास्त्रान्तरिवहितस्यापि द्रव्यस्य संप्रहृणार्थः । श्रतः श्राज्यमपि द्रव्यम् । पृथग्प्रहृणमितरेतरसंयोगव्यु-दासार्थम् ॥ ११ ॥

चरुस्याल्या वा । १२ कंसेन विकल्पः ॥ १२ ॥ भा - यदि दही, दूध या यवागू, होम करना हो तो उसके धोने की आवश्यकता नहीं, जैसा हो उसी प्रकार बिन धोये ही कांस्य पात्र या चरुस्थाली में रख के उससे या खुवा से हवन करे ॥११॥१२

#### श्चानये स्वाहेति मध्ये । १३

श्रग्निमध्ये सायंकाले ॥ १३ ॥

भाव-शौर पहली आहति "अग्नये स्वाहा" अग्नि के वीच में सार्यकाल में करे॥ १३॥

## तूर्णां प्रागुदोचीमुत्तराम् ।१४।

मन्त्रमनुद्वारयन्नग्नावेव प्रागुद्दीच्यां दिशि द्वितीयां जुहुयात्। सायंप्रातर्होमस्य देवतासाध्यत्वात् ययाकयाचित्प्राप्तौ तृष्णींधर्मस्य प्रजापतावसाधारण्यात् प्रजापतये स्वाहेति मनसा स्मरत् जुहुयात्। 'तस्मात्प्राजापत्यां मनसा जुह्वति' इति श्रुतेः। तृष्णींधर्मत्वं प्रजापतेरेव या प्रागुद्दीची श्राहुतिर्दर्शपूर्णमासयोः 'श्र्यम्ये स्विष्टकृते स्वाहा' इति तामत्र जुहुयादिति केचित्। तद्युक्तम्—वद्यमाणस्य सिद्धवद्वचपदे-शायोगात्, श्रसाधारणशब्दाभावाच्च। पश्चाद्विधानादेवोत्तरत्वे सिद्धे चत्तरामिति यत्र यत्रैकाहुतिश्चोद्यते तत्र तत्रैपैवोत्तरा स्यादित्येव-मर्थम्॥ १४॥

मा०-अौर दूसरी आहुति ईशान कोण में विना मन्त्र ही करे ॥१४ सूर्यायेति पातः पूर्वाम् । १५

सूर्याय स्वाहेत्यग्निमध्ये॥ १४॥

भाव-"सूर्याय स्वाहा" मन्त्र से ऋग्नि के वीच प्रातःकाल में हवन करे॥ १४॥

# नात्र परिसमूहनादोनि पर्युक्षणवर्जम् । १६

वहुवचनमुपरिष्टाद्धोमानां सिमदाधानादेश्च निवृत्त्यर्थम् । समन्तात् परिषेचनं, पुरस्तादुर्पारष्टाच्च पर्युत्तराम् । उत्तराहुत्यनन्तर-सुभयत्र सिमधमादृष्यादित्युपदेशः । पूर्वाहुतेः पूर्वमिति केचित् ॥ १६ ॥

भा०-प्रातःकाल श्रीर सायंकाल के हवन के लिये परिसमृहन श्रादि पर्युत्तरण को छोड़कर हवन करे।। १६॥

पत्नी जुहुयादित्येके। १७ गृहाः पत्नी गृह्योऽग्निरेष इति । १८

स्पन्टे ॥ १७-१८ ॥

भा०-किन्हीं आचार्यों का मत है कि पत्नी ही हवन करें ॥१७ ।। भा -पत्नी को गृह्या कहते हैं और इस अप्नि को भी "गृह्य" कहते हैं अत एव पत्नी ही दोनों समय हवन किया करे।। १८॥

सिद्धे सायंगातर्भृतमित्युक्त श्रोमित्युच्चैर्त्र्यात् ॥ १९

भोजनार्थमोदने सिद्धे भोजनकालस्य परतन्त्रत्वात्र पूर्वोह्ननियमः, कालस्योपलन गुरुवास। अतत्यिभ मोजनार्थे पाके पाकं कृत्वा मनत्येव तरिमन् काले होमः । सायंप्रातरिति रात्रावहनि चेत्यर्थः। प्रकृतितस्सिद्धे वचनं परिचरणतन्त्रेयु कालप्राप्तिनीस्तीति द्योतनार्थन्। पचनकत्री भूतमित्युक्ते गृहपतिरोमिति ब्र्यात् ॥ १६॥

भा०-प्रातःकाल श्रीर सायंकाल के हवन जव भोजन तैयार हो और पाक करने वाला कद्दे कि तैयार हुआ तो घर का मालिक 'श्रोप्' कहे उसी समय हवन करे।। १६॥

माक्षा नमस्त इत्युपांशु । २० ।

ब्र्यादित्यनुवर्तते ॥ २०॥

भा०-ह्वनादि यज्ञ कार्य में यज्ञकर्त्ता कर्म सम्बन्धी वार्ते करे इसके अतिरिक्त लौकिक वातें न करे। यदि लौकिक वातें करे तो प्रति वार "तस्मै तन्माज्ञाः" नीचे स्वर से मन ही मन कहे और ऊँचे स्वर से 'श्रोम' कहे ॥ २०॥

प्राजापत्यं सौविष्टकृतं जुह्यात् **हविष्यस्यानस्य** 

च। २१। परिचरणतन्त्रेण । प्रकृतितस्सिद्धे हिविष्यस्येति ऋहविष्य-भोजने भोज्यसंस्कारप्रयुक्तम्रान्त्या तेनापि होम श्राशङ्करे तेति तनिवृ-त्त्यर्थम् । प्रजापतये स्वाहेति मनसाऽग्निमध्ये, श्रग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति शागुदीच्यां जहयात् ॥ २१ ॥ Hese age that they a Stead of which is not re-cite

भा०-पाक तैयार होने पर उस हविष्यात्र में से कुछ / लेकर हिवष्य व्यक्षन के साथ उसी अप्रि में विना मन्त्र पढ़े एक आहुति देवे। इस आहुति में स्नुवा आदि की अपेत्ता नहीं हाथ ही से करे।। और 'प्रजापतये स्वाहा" मन ही मन कर पहिली आहुति देवे और स्विष्ट छत् देवता को ' स्विष्ट छत् स्वाहा" मन्त्र से दूसरी आहुति देवे।।२१॥

बलीनयेत्। २२।

वदयमाणेषु देशेषु निवध्यात् ॥ २२ ॥
भाव-त्रागे कहे जाने वाले स्थानों में बिलयों को रक्खे ॥२०॥
बहिरन्तर्वा चतुर्निधाय । २३ ।

गृह एव गर्भगृहात् बहिरन्तगृहि वा। चतुरिति प्रहणात् वितंचतुष्टयार्थमादावन्ते च सक्चदेव परिषेचनम् । प्रत्येकमिति केचित्॥ २३॥

भा॰-घर के भोतर या भीतरी घर के वाइर ४ स्थानों में ४ अवतग २ बिल रक्खे ॥ २३॥

मिणकदेशे । २४।

उद्कथारणसमीपे ॥ २४ ॥

भा०-एक जल देवता के लिये जहां घर के काम के लिये जल रक्खा जाता हो।। २४।।

मध्ये । २५ ।

गर्भगृहमध्ये ॥ २५ ॥

भा॰-दूसरा भीतरी घर के बीच में ॥ २४॥

द्वारि। २६।

गर्भगृहस्यैव ॥ २६॥

भा०-फिर भीतरी घर के दरवाजे पर ॥ २६ ॥

शय्यामनु । २७।

शयनदेशसमीपे ॥ २७॥

भा०-एक बलि शयन करने के शय्या के बगल में ॥ २०॥

#### वर्च वा। २८।

श्रनिवत्यनुवर्तते । श्रनुवर्चं श्रवस्करदेशसमीपे । वाशब्दो विनिवेशार्थः, शय्यामनु नक्तम् , वर्चमनु दिवा देशोचित्याद्देवतौचि-त्याच्च ॥ २८ ॥

भा०-एक विल जहां घर का वहारन कूरे की जगह हो वहां रक्षे ॥ २८॥

#### अथ सस्तूपम् । २९।

अन्वित्यनुवर्तते । अथेति वद्यमाणानां सर्वेषां वलीनामेष दव देश इत्येवमर्थम् । प्रथमस्थापितः स्थूणः सरतूपः । तमनु तत्समीप-देशे ॥ २६ ॥

भा०-एक विल घर में पहिले से स्थापित स्थूण (खूंटा) के पास देवे ॥ २६॥

## एकैकमुभयतः परिविश्चेत्। ३०।

त्रादौ बलेरभावात् परिषेकशब्दानन्वयादद्भिस्सेचनमात्रम्। सिक्ते विलं निधाय प्रागुपक्रमं प्रदित्तिणं परिषिब्चेत् ॥ ३०॥

भा०-एक २ भाग करके ही विल स्थापन करे और प्रत्येक के रखने के पहिले एकवार और पीछे एकवार जल छिड़के॥ ३०॥

## शेपमद्भिस्सार्धं दक्षिणा निनयेत् । ३१ ।

बिलस्थाल्यां शिष्टमन्नमद्भिस्सह सरतूपस्य दिच्चणतः प्राचीना-वीती पित्र्येण तीर्थेन निनयेत् ॥ ३१ ॥

भाव-उसके बाद पात्रस्थ बचे हुये अन्न को जल में धोकर हाथ की पैत्र अंगुली से दिच्चण की त्रोर फेंके, वह बिल पितृगण के लिये होगा ॥ ३१ ॥

## फलीकरणानामपामाचामस्त्रेति विश्राणिते॥३२॥

कणानुद्कमोदनावस्रंसनं च मिश्रीकृत्य विगतश्रमेऽतिथौ 'श्रग्रं ब्राह्मणाय द्त्वा' इत्यस्यानन्तरिमत्यर्थः । सस्तूपस्य प्रागुद्दीच्यां दिशि रौद्रत्वात् ॥ ३२ ॥ भा०-यह बिल, यब या भात के मांड से तेयार करे श्रीर"रुद्राय नमः" मन्त्र को पढ़कर रुद्र देवता के नाम ईशान कोए में विल देवे ॥ ३२॥

पृथिवी वायुः प्रजापितिर्विश्वेदेवा आप श्रोपिधवनस्पत्य आकाशः कामो मन्युर्वा रक्षोगणाः पितरो रुद्र इति वित्रदेद-तानि ॥ ३३ ॥

उक्तानां बलीनां यथासङ्खन्यमेता देवताः। कामो मन्युवेंति पूर्ववद्विनिवेशः॥ ३३॥

भाश-पूर्वोक्त बलियों के देवता ये हैं—पृथिवी, वायु, प्रजापति, विश्वेदेवा, आप, ओषधि, वनस्पतय, आकाश, काम या मन्युः रह्नो-गण, पितर और रुद्र ये ॥ ३३ ॥

### तूष्णीं तु कुर्यात् ॥ ३४ ॥

तुशव्दोऽवधारणार्थः । बिलदैवतान्येव तूष्णीं न होम इति । होमेऽपि प्राजापत्यां मनतेव, 'तस्मात् प्राजापत्यां मनसा जुह्नति' इति श्रुतेः । कुर्यादिति मनोव्यापारमात्रार्थम् । पृथिव्ये वायवे प्रजापतये विश्वेभ्यो देवेभ्योऽद्भश्च श्रोपधिवनस्पतिभ्य श्राकाशाय कामाय मन्यवे रह्मोगणेभ्यः पितृभ्यो रुद्रायेति । चतुर्थ्यन्तं मनसा रमरन् विलं निद्ध्यात् ॥ ३४॥

भा०-इन देवताओं के नाम मन ही मत लेकर विल देवे। जैसे 'पृथिवये नमः', 'वायवेनमः', 'प्रजापतये नमः', 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः', 'अद्भ्यो नमः', 'अोषधि वनस्पतिभ्यो नमः', 'आकाशायनमः' कामायनमः', 'मन्यवे नमः', 'रच्चोगऐभ्यो नमः', 'पितृभ्यो नमः' 'रुद्राय नमः' मन से इनको स्मरण कग्ता हुआ विलयां अलग २ देवे॥ ३४॥

# सर्वस्य त्वन्नस्यैतत्कुर्यात् । ३५ ।

सर्वस्येति शावमांसादिपरिग्रहणार्थम् । इतरथा श्रोदनश्येव स्यात् । प्रकृतावौपासनहोमे दर्शनात् । श्रन्नस्येति श्रदनीयस्य ।

तुशब्द एवकारार्थे । भोर्जनार्थस्येव न दर्शपूर्णमासाद्विचरोः क्रसरस्था-लीपाकादेश्चेत्यर्थः । एतदिति । सक्तवैश्वदेवकर्मपरामर्शार्थम् , इतरथा हि प्रक्रतत्वात् वलीनामेव एप विशेषहस्यात् । कुर्यादिति अनग्नेरिप लौकिके करणार्थम् ।। ३४ ॥

भा - पित कार्य के लिये हो या ब्राइए भोजनादि कल्याए कार्य के लिये हो या अपने खाने के लिये हो सब ही प्रकार के अन्न से बिल दे सकते हैं।। ३४॥

श्रसकृष्वेदेकस्मिन् काले सिद्धे सकृदेव कुर्यात् । ३६ । रात्राविन्ह वा यदि पाकावृत्तिः स्यात् तदा एकदैव कुर्यात् ।३६। भा०---यदि एक ही समय में कई बार मोजन वनाना पड़े तो बिलकर्म केवल एक ही वार करना चाहिये ॥ ३६ ॥

बहुधा चेद्यद्रगृहपतेः। ३७

युगपत् क्रमेण वा यदि वहवः पाकाः स्युः तदा यद्गृहपतेर्भी-जनार्थं तस्यैव कुर्यात् । यदि गृहपतेरिप वहवः तदाऽप्येकस्यैव । ३०।

भा० - यदि एक मकान में एक वंश के अनेक व्यक्ति भिन्न २ पाक करके रहते हों तो उनमें से जो सबसे श्रेष्ठ होने से घर के मालिक हों, वही पाकशाला से इस बिल कार्य को करे अन्य महानस वाले न करें।। ३७॥

सर्वस्य त्वन्नस्यामौ कृत्वाऽश्रं ब्राह्मणाय दत्वा स्वयं कुर्पात् ॥ ३८ ॥

सर्वस्येति ब्रह्विष्यस्यापि परिव्रह्णार्थम् । अन्नस्येति पक्वोपलच्चणार्थम्, व्रपक्वान्ननिवृत्तये च । अग्नाविति लौकिकाग्न्यर्थम् । तुराव्दो
विशेषणार्थः । न पूर्ववदेकस्यैत्र, किंतु सर्वेषमेव पकानां किं चित्तिःश्चित् गृहीत्वैकीकृत्य तूष्णां लौकिकेऽग्नौ द्वे ब्राहुतो निद्ध्यादित्यर्थः । भोज्यसंस्कारार्थमेतत् । अश्रं प्रथमं ब्राह्मणाय, ततो वर्णान्तरेभ्यो यथाक्रमेण, तस्योपलच्चणार्थत्वात्। प्रतिवर्णमपि श्रंयसे पूर्वं द्यात
अयं चार्थः—'सर्वान्वैश्वदेयान्ते मागिनः कुर्वति' इत्येवमादीनि वाक्यान्यालोच्य न्याय्य उक्तः । अवश्यकार्यमेतदानं पक्वस्य यथासम्भवं
स्त्यानामनुरोधेन । चतुर्थ्यैव सिद्धे द्त्वेति यथासम्भवं दानमात्रे

निवृत्तेऽि (स्वभोजनाभ्यनुज्ञानार्थं,नावश्यं तेपां भोजनपरिसमाप्तिः प्रतीत्त्रणीयेति । दत्वेति समानकर्तृकत्वं स्वभोजने नित्यसम्बन्धार्थम् । श्रसति
स्वभोजने नावश्यकार्यमेतद्दानमिति । श्रसत्यि स्वभोजने सर्वकालसाधारण्येन येभ्योऽवश्यं दानमुक्तं 'सान्तानिकं यद्त्यमाण्णम्' इत्यादिना
तेभ्यो द्यादेव । स्वयंत्रहृणमात्मन एवानन्तर्यनियमार्थं, न तु भृत्यादीनामिति । भृत्यानामागतैससहापि भोजनम् । तथा भार्याया श्रिष्
गर्भिण्या रोगिण्याश्च । स्वस्थायाम्तु स्वभोजनानन्तरमेव । भुञ्जीतेति
वाक्यशेषात् सिद्धे कुर्यादिति वचनं सत्कारमि तेषां कुर्यादिःयेवमर्थम् ।
स्मृत्याचारिसद्धस्य सूचनमात्रमेतत्सूत्रम् ॥ ३८ ॥

भा - यदि एक घर में अनेक पाक वाले रहते हों तो उनमें से जिसका भोजन सबसे पहिले तैयार हो वही थोड़ा अन्न अग्नि में डाल कर पके अन्न में से पहिले नाहारण को, श्रेष्ठ अतिथि को देकर तब स्वयं भोजन करे।। ३८॥

त्रीहिमसृत्या यवेभ्यो यवेभ्योवाड्डब्रीहिभ्य: स्वयं हरेत्

सायं प्रातहों मवर्जं स्त्रयं होत्रप्, इति कर्तुरिनयमे प्राप्ते त्रीहि-सम्पत्तिप्रभृति यवसम्यक्तिप्रभृति वा षट्सु मासेषु स्वयं कर्त्रत्वं निय-म्यते । हरेदिति सहोमस्य वलेरुपलज्ञणार्थम् ॥ द्विरुक्तिः पटलसमा-प्रिचोतिका ॥ ३६॥

> इति गृह्यसूत्रवृत्तौ प्रथमस्य पञ्चमः खग्डः समाप्तश्च प्रथमपटलः ॥ १ । ४ ।

भा०—अव 'काम्य विल' कहते हैं यदि अपने की बहुत दिन तक जीने की इच्छा हो तो 'आशस्य' नामक विल देवे। अर्थात जिस समय तक हेमन्त ऋतु का धान्य-शस्य (खेत में लगा हुआ अन) तैयार न हो तब तक यव के अन्न होने के पहिले और उसके बाद जब तक यव शस्य तैयार न हो तब तक धान्य की उत्पत्ति के निकट एक बिल देवे ॥ ३६ ॥

इति खादिरगृह्यसूत्र के पहिले पटल के पख्चम खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुन्ना त्रोर पहिला पटल भी पूरा हुन्ना ॥ १ ॥ ४ ॥

# पौर्णमासोपक्रमौ दर्शपूर्णमासौ ॥१॥

नित्यप्रकरणे विवानाद्विकारानुके श्र सायंप्रावहीं मवत् नित्या-वेती । तद्वदेवाधिकारे क्ष्यं च या ब्राजीवं या बदाश्रमं या बदाश्वानं वा । श्रतो नान्तरा त्राद्ध ग्रभोजनम् । स्प्रीचन्द्रमप्तौ यस्मिन् चणे सह वसतः स दर्शः । यस्मिन् चणे चन्द्रमाः पूर्यते सर्वाभिः क्लाभिः सपूर्णमासः । तत्काल सम्बन्धौ प्रयोगौ दर्शपूर्णमातात्रिति लद्येते । न चैकस्मिन् चणे, किन्त्वपराद्ध उपक्रम्यानन्तरे पूर्वाह्वे समाध्तिर्युक्ते ति, तस्मान्य-ध्यन्दिता रूष्यमाणामिमध्यन्दिनाच पूर्वमसौ चणोऽस्ति, श्रसौ कालो लद्यते, श्रत एतत्कालवर्तिनौ प्रयोगौ कुर्यादित्यर्थः । वद्यमाणसूत्रद्ध-येनैव सिद्धे पौर्णमात्रोपक्रमात्रिति मध्ये मरणशङ्कायामपि दर्शनिय-मार्थम्, उपक्रम स्योपसंद्वारापेच्यत्वात् । एवं 'सायमाहुत्युपक्रमम्' इत्य-त्रापि द्रश्व्यम् । समाप्तिप्रकार उक्को निदाने "तद्य्यपरपच्चे द्रस्यारम्य । मृतेऽप्येवमेव समाप्य संस्कर्ता संस्कुर्यात् ॥ १॥

मा॰—नित्य कर्मों के प्रकरण में जैसे सायं प्रातःकाल का होम नित्य है उनी प्रकार दर्श और पौर्णमास याग जीवन भर करना चाहिये सूर्य और चन्द्रमा जिस चण में एक साथ रहते हैं. उसको "दर्श" या 'अमावस्या' कड़ते हैं। और जिस समय चन्द्रमा सब कजाओं से पूरे होते हैं उन समय का नाम पूर्णमासी है। दर्श काल सम्बन्धी याग को 'दर्श' (याग) और पूर्णिमा सम्बन्धी याग को 'पूर्णमास' (याग) कहते हैं॥ १॥

दार्शं चेत्पूर्वमुपपद्येत पौर्णमासेनं प्ट्याज्य तत्कुर्यात् ॥२॥

चतुर्थीहोमानन्तरं यदि दर्शः पूर्वमागच्छेत् तदा दर्शकालात् पूर्वमेव पौर्णिमासं कृत्वा स्वकाले दर्श कुर्यात् ॥ २॥

भा०-चतुर्थी होम के अनन्तर यदि 'दर्श' पहिले आ जावे तब दर्श काल से पहिले पौर्णमास करके अपने काल में दर्श याग करे।।२॥

अकुर्वन् पौर्णभासीमाकाङ् क्षेदित्येके ॥ ३ ॥

पूर्वोपपन्नमेकदेशम् । त्रागामिनीं पौर्णमासीमाकाङ्केदिस्येक आहः । तामारभ्यानुष्ठानं स्पष्टम् ॥ ३ ॥ भा०-किन्हीं आचायों का मत है कि यदि पौर्णमास याग को न करे तो आने वाली पौर्णमासी की प्रतीचा करे अर्थान् पौर्णमास याग का आरम्भ करके दर्श याग फरे ॥ ३॥

अपराज्वे स्नात्वौप ।सथिकं दम्पती अञ्जीयाताम्।। ४॥

स्तानमिष मञ्जिन्दिना रूथ्वमेत्र, कर्माङ्गं तु तत्। यजनी पात्पूर्व-महः उपव तथं तदद्योंग्यं यच्द्रास्त्रान्तरहष्टमरातीयं तदौपव सथिकप्। तदुक्तं मांसमये नाश्रीयाताम् इति ॥ ४॥

भा०—िद्देन के दोपहर के अनन्तर स्त्री पुरुष स्नान करके जप्त बात के दिन करने योग्य भोजन करें (निधिद्व भोजन—जैसे मांस स्त्रीर मिद्दरा का भोजन न करें)॥४॥

मानतन्त्रव्य उवात श्रेयसीं प्रजां विन्दते काम्यो भवत्य-क्षोधुको य श्रोपवमथिकं भ्रुङ्क्ते ॥ ५ ॥

मानतन्तव्य इति ऋषिः । विन्दते लभतं । काम्यः प्रियदर्शनः अज्ञोवुकः ज्ञुत्पिपासारिहतः ॥ ४॥

भा०—मान तन्तव्य नामक ऋषि कहते हैं कि जो कोई यजमान उपवाम दिन में उस दिन के नियमानुसार यदि भोजन न करे तो उस की सन्तित पाप बुद्धि होगी और जुया से आकुल होकर यागानुष्ठान में मन चक्चल रहेगा इतिलये यदि अच्छी सन्तान पाने की इच्छा हो तो उपवास दिन के भोजन करने योग्य पदार्थ खावे और भूख प्यास से रहित होकर याग करे।। ४।।

#### तस्माद्यत्कामयेत तद्भञ्जीत ॥६॥

यदीच्छेत् प्रजादीनि तदौपवसिथकं भुक्षीत । नित्यादेवानुष-क्रिकं फलिमदं, स्तुतिमात्रं वा। रात्रौ न भोजनम्, अपराह्मग्रहण्य सर्वाहर्नियमार्थत्वात्। यतो रागप्राप्तस्यायं नियमः अत उपवासेऽपि न वैगुण्यम्॥६॥

भा॰—भूखे प्यासे रहकर याग करने में जो फल होता है श्रीर [भोजन कर के याग करने में जो फल होता है उसको कहा गया है इत होनों पन्नों में यजमान को जैसी इच्छा हो वैसा करे॥ ६॥ नात्रत्यमांचरेत् ॥ ७ ॥

व्रतिवरोधि मधुमांसभन्नणादि न कुर्यात् त्रा प्रयोगसमाप्तेः॥॥ भा०—जब तक याग किया की समाप्ति न हो तब तक याग कर्त्ता व्रतिवरोधि मदिरा मांस का भन्नण न करे॥॥॥

मातराहुति हुत्वा ॥ ८ ॥

दर्शपूर्णमासौ कर्तव्याविति शेषः। अनयोः पूर्वेद्युरुपकान्तत्वात् प्रातराहुतेश्च 'सर्वमहः प्रातराहुतः स्थानम्' इत्यस्तमयात् कालाभ्यतु-ज्ञानात् प्रातराहुतिः पश्चात् स्यादिति तन्निवृत्तये पूर्वत्वं नियम्यते ॥॥

भा०-दर्श ऋौर पौर्णभास इन दो यागों के पहिले उस दिन की प्रातःकालिक छाहुति कर लेवे तब कर्तव्य याग करे ॥ = ॥

इनिर्निर्वपेदग्रुष्मे त्वा जुच्छं निर्वपामीति देवताश्रयं सकु-ग्रजुषा हिस्तूष्णीम् ॥ ९ ॥

यद्धविश्शास्त्रान्तरे प्रज्ञातं त्रीहितण्डुला यवतण्डुला वा तद्धविः पाणिना गृहीत्वा मुष्टिपूर्णं 'श्रम्भये त्वा जुष्टं निर्वपामि'हित निर्वापवध-थादैवतं चरुस्थाल्यां सकृदावपेत् द्विरमन्त्रकम् । ब्रह्मोपवेशनान्तं कृस्वा निर्वापः, श्रस्यापि ब्रह्मापेत्तत्वात् ॥ ६ ॥

भा०-उसके बाद हिव पाक के उपयोगी करने के लिये धान्य हो या यव उसको हाथ से पकड़ कर मुट्टी भर ले २ कर "अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि" मन्त्र पढ़कर एकवार और दो बार बिना मन्त्र के यों तीन हो बार में हिवयोग्य धान्य या यव को स्रोखरी में डाले। परन्तु पहली वार में जो मन्त्र पढ़ा जाता है वह मन्त्र जिस देवना के निमित्त हो उसी देवता का मन्त्र होना चाहिये॥ है।

त्रिदेशेभ्यः प्रक्षालयेत् ॥ १० ॥

उर्केन प्रचालनम् प्रकृतत्वात्सिद्धे देवेभ्य इत्यन्यत्रापि यहेवेभ्यः प्रचालनं तत्त्रिरेवेत्येवमर्थम् । यथौपामनहोमे ॥ १०॥ अथ प्रचालन प्रसङ्गा रुच्यतेः—

द्विर्मनुष्येभ्यः ॥ ११ ॥

भोजनार्थे पाके द्विः प्रचालनम् । श्रासत्यपि पाके यत्र प्रचालनं विहितं तत्रापि द्विरेव ॥ ११ ॥

सकुत्पितृभ्यः ॥ १२ ॥

श्राद्धे ऽन्वष्टक्यादौ च असत्यिप पाके पूर्ववत् ॥ १२ ॥ अथ प्रकृतमाहः—

भा०-इसके वाद उल्ज़िल के पीछे पूर्व मुँह खड़े होकर दोनों हाथों से मूसल पकड़ कर कूटे। कूटने पर तुप वियुक्त धान्य या यव के तण्डुल खादि को तीनवार साफ कूटकर देवता के लिये, ब्राह्मण भोजनादि मनुष्य कार्य के लिये एक ही वार और पिन कार्य के लिये एक ही वार जल में धो लेवे।। १०॥ ११॥ १२॥

मेक्षणेन पदिक्षणमुदायुत्रं अपयेत्।। १३ ।।

मेच्यां द्वीं। यथा पंक्तिवैपन्यमुद्दकस्य वा वहिर्निर्गमनं न भवेत् तथोदायुवं पचेत्। यदि वहिर्निर्गच्छेत् उद्कं 'ययोरोजसा' इत्यप आ-सिक्चेत्, यद्यक्ष उत्वयण क्रियते तद्य उपनिनयेत् 'ययोरोजसा स्कमिता रजांसि वीर्येभिर्वारतमा शविष्ठाः। यावत्येते अप्रतीता सहोभिः विष्णो अगन्वरुणा पूर्वहूतौ स्वाहा' इति श्रुतेः॥ १३॥ अरिमन् काले परिस्त-रण्म्, आज्यसंस्कारश्च, संस्कारायेच्यत्वात् शृताभिष्ठारणस्य। तत आह्-

भा०-मेच्नण नाम कर द्रुल से स्थाली में इंस भांति चारों श्रोर घुमा २ कर चलावे जिसमें जल श्रीर तण्डुल मिल जावे श्रीर पात्र से बाहर न गिरे ॥ १३॥

शृतमभिघार्योदगुद्धास्य मत्यभिघारयेत् ॥ १४ ॥ सुवेणाच्येनाभिघारणम् ॥ १४ ॥

भा०-जब पाक प्रस्तुत हो जावे तब घी का ढार दे श्रिप्ति के उत्तर में उतार कर फिर उसमें भागानुसार घी मिलावे ॥ १४॥

सर्वाएयेवं इवींषि ॥ १५॥

सर्वाणीति व्याप्त्यर्थम् । एवं निर्वापादि । हर्वे पीति ओजनार्थे आद्धार्थे कृसरस्थालीपाकादौ च निवृत्त्यर्थे न हि तेषु पाकावस्थायां हिविष्ट्वं, देवतोद्देशाभावात् । श्रौपासनवैश्वदेवहोमयोरप्येकदेशस्यैव

देवतो हेशेनो पादानं 'अन्नस्य' इति षष्टीनिर्देशात् । अतस्तयोरुपि पाका-वस्थायां न हविष्ट्वम् ॥ १४॥

#### वर्हिषि साद्य ॥ १६॥

साद्यानीत्यर्थः । छान्दसः रोर्जुक् । वहुवचनात् सर्वार्येव होमाङ्कानि साद्यानि, आज्यं चरुः स्नुवः जुदूः इध्म इति । विर्धिति सिद्धः विन्नदेशात् स्तरणावस्थायामेव तथा स्तरणं यथा तत्र सादनं भवेत् । इतरेतरयोगाच्च हिवस्सादनावस्थायामेव उत्तरतस्सर्वेषां सादनम् । बहुलवचनाल्जुक् कृतोऽस्य बहुविपयत्वं गमियतुम् । अतो विवाहादिष्विपि
होमाङ्गानामेव सादनम् । श्रोपासनादिपु दर्भाभावादुत्तरतो भूमावेव सादनं प्राक् पर्युच्चणात् । एवं प्रयोगक्रमः-प्रातराहुतिं हुत्वा ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा चरुं अपियत्वा परिस्तीर्य दर्भेपूपिवश्याज्यं संस्कृत्याभिधार्य हर्वोष्युत्तरतस्सर्वाणि सादियत्वा परिपेचनादिप्रयदान्तं कुर्यात् ।१६।

तत आह—

भा०-हवन की सारी सामग्री वर्हि नामक कुशों पर यथा प्रयो-जन कम से रक्खें । जैसे आज्य, चरु, ख़ुव, जुहूः, इध्म ॥ १४ ॥ १६ ॥

आज्यभागौ जुहुयाच्चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा पश्चावत्तं भृगूणां जामद्ग्न्यानामग्नये स्वाहेत्युत्तरतस्सोमायेति दक्षि-णतः । १७।

आज्यभागाविति संज्ञा व्यवहारार्था । सुवेशादायाज्यं जुह्वामा-सिच्य जुह्वेव चतुर्गृहीतं जुहुयात्। सुवेशा सुच्याज्यं गृह्वीयात् इति परि-भाषादर्शनात् गृह्यान्तरदर्शनाच्च सुवजुह्वोः प्राप्तिः । सुवस्य तु विवा-हप्रकृतित्वाद्षि प्राप्तिरत्त्येव । गृहीत्वेति प्रत्येकं चतुर्ग्रह्णार्थं, पौनः-पुन्येऽपि क्त्वाविधानात् ॥ १७॥

भा०—जिस समय 'उपस्तीर्णाभिघारित' नामक होम करने की इच्छा हो उसी समय उसके पहिले दो उपघात होम करे। इस उपघात होम के पहिले दो उपघात होम के । इस उपघात होम के करने में सुच् (यज्ञपात्र) के मध्य में प्रतिवार सुवा के धारा पर चार वार आउथ लेकर करे। इस चार वार लिये हुये आउथ को

पहिले 'अग्नय स्वाहा" मन्त्र से अग्नि कुएड के बीच में उत्तर भाग में और उसके पश्चात् "सोमाय स्वाहा,' मन्त्र से अग्निकुएड के दिल्ला भाग में पूर्व दिशा की ओर होम करे। इसमें विशेषता यह होगी कि भूगु और जामदग्न्य गोत्र वालोंको प्रतिहोम में पांच वार आज्य करना चाहिये॥ १७॥

विपरीतिमतरे ॥ १८ ॥

सोमाय स्वाहेति द्विणतो हुत्वाऽग्नये स्वाहेत्युत्तरत इत्यन्य आचार्या आहुः॥ १८॥

आ८-अन्य श्राचार्य लोग कहते हैं कि "सोमाय स्वाहा" मंत्र से 'दिल्ला भाग में होम करके "अग्नये स्वाहा" मन्त्र से उतर भाग में होम करे ॥ १८॥

आज्यमुपस्तीर्य इत्रिषोऽत्रद्येन्मेक्षणेन मध्यात् पुरस्तादिति ।१९

स्रुवेण जुह्वामुपस्तीर्य हिवेषोऽङ गुष्ठपर्वपृथुमात्रमवखण्ड्य ह-स्तेन जुह्वां निद्ध्यात् । इतिशब्दः पत्तसमाप्तचर्थः ॥ १६ ॥

पश्चाच्च पश्चावत्ती। २०।

भृगुजामद्ग्न्याद्यः ॥ २०॥

अभिषार्य प्रत्यनक्त्यवदानस्थानानि । २१ ।

म्नुवेग् जुहूस्थं हविरभियार्य आज्येन अवदानस्थानानि यथाक्रम-मवनक्त्याज्येन ॥ २१ ॥

भा०-उपघात होम के पीछे उसी खुच्से एक वार आज्य लेकर उसके उपर मेचण से चह प्रहण करे। विशेषता यह होगी कि यदि वह भृगु गोत्र वाला हो तो चह स्थाली के बीच में पश्चाद्ध से पांचवार चह प्रहण करे और यदि वह अन्य गोत्र का हो तो चहस्थाली के बीच से पूर्वार्द्ध से चार वार प्रहण करे। पीछे जिस २ स्थान से मेचण द्वारा चह निकाले आज्य द्वारा उसी २ स्थान को सक करे। जिससे चह सूख न जावे याग के योग्य रहे। अनन्तर उसी गृहीत चह के उपर फिर आज्य दारहर उसी उपर नीचे आज्य विशिष्ट चह से 'अग्नेय स्वाहा"

मन्त्र से मध्य में हवन करे। इसी को 'उपस्तीर्गाभिघारित होम' कहते

न स्विष्टकृतः ॥ २२॥

स्विष्टकृतोऽवदोयावदानस्थानं न प्रत्यनक्ति।प्रत्यञ्जनप्रतिषेधादेवेदं सर्वं स्विष्टकृतोऽपि तुल्यमिति गम्यते ।। २२ ॥

अग्रुष्में स्वाहेति जुहुयाचहेवत्यं स्यात् ॥ २३ ॥

अप्रये स्वाहेतिवत् यथादेवतमिप्तमध्ये जुह्ना जुहुयात्। एतस्प्र-धानं, अत एत र्व्यतिरिक्तं सर्वं चरुतन्त्रेषु प्रवर्तते ॥ २३॥

भा०—स्विष्टकृत् होम के लिये चरुप्रहण् करके, उस चरु को ठीक ठीक रखने के लिये आज्य सिञ्चन करना आवश्यक नहीं। इसी गृहीत होमीय को "अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा" मन्त्र से (या जिस देवता के लिये हवन हो उनके मन्त्र से) अग्नि के उत्तराई के पूर्वाई में हवन करे इसी को स्विष्टकृत् होम कहते हैं॥ २२॥ २३॥

स्त्रिष्टकृतस्सकृदुपस्तीर्य द्विर्भृगूणां सकृद्धविषो द्विरिमघा-र्याग्नये स्त्रिष्टकृते स्त्राहेति प्रागुदीच्यां जुहुयात् ॥ २४ ॥

शोभनिमध्यं द्रव्यप्रतिपत्तिद्वारेण करोतीति स्विष्टक्रद्यागः। अतोऽप्रधानिमद्म् । सक्टदुपस्तीर्येत्यन् द्यते भृगूणां जामदग्न्यानां द्विरु-पस्तरण्विशेषं विधातुम् । मध्यात्पुरस्तात्पश्चादित्येतेषां प्रत्याम्नायः सक्ठद्धविष इति । उत्तरार्धाद्वदानं उत्तरार्धात्स्वष्टकृतः इति श्रुतेः, गृ-स्वान्तरिवधानाच्च । द्विरिभवार्येति सक्ठत्प्रत्याम्नायः । प्रागुदीच्यामिति मध्यप्रत्याम्नायः । अयोपरिष्टाद्वोमः आज्येन व्याहृतिभिः तिसृभिः प्राजापत्यया च ॥ २४ ॥ तत आह्—

भा०—िह्वष्टकृत् होमके लिये एकवार उपस्तरण करके तब होम करे परन्तु भृगुगोत्रोत्पन्न व्यक्ति को दो वार उपस्तरण और एकवार होम और दो वार श्रमिधारण करके 'श्रम्नये स्विष्ट कृते स्वाहा" मन्त्र से श्रम्नि के मध्य पूर्व उत्तर दिशा में होम करे॥ २४॥

सिवधमाधाय ॥ २५ ॥

परिपिञ्चेहित्यध्याहारः । 'सिमधमाधायानुपर्युत्तेत्' इति गौन-मीयवचनात् । पूर्वनिहितां सिमधमग्नावाधाय 'श्रदितेऽन्वमंस्थाः, श्रजु-मतेऽन्वमंस्थाः, सरस्वत्यन्वमंत्थाः, देव सिवतः प्राप्तावीः' इति पूर्वव-त्परिपेचनम् । गृद्धान्तरान्मन्त्रप्राप्तिः ॥ २४ ॥

भा०-- अग्नि में सिमद् का आधान करके "अदितेऽन्वमंस्था; 'अनुमतेऽन्वमंस्थाः', 'सरस्वत्यन्वमंस्थाः', 'देव सिवतः प्रासावीः.' मंत्रों से अनुपर्युक्त् करे॥ २४॥

दर्भानाज्ये इविषि वा त्रिरवधायाप्रमध्यमूलान्यक्तं रिहा-णा त्रियन्तु वय इत्यभ्युक्ष्याग्नावनुगहरेत् यः पश्रूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो छपा पश्रूनस्माकं मा हिंसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा इति ॥ २६ ॥

प्रतिपत्तिकर्मेद्म्,दर्भानिति द्वितीयानिर्देशात् । श्रत एव स्तृतान् सर्वान् दर्भान् शिष्ट श्राज्ये हिविपि वा सक्तुन्मन्त्रमुक्त्वाऽप्रांणि मध्यानि मृ्लानि च क्रमशस्टम्मृज्य पुनश्चैयं द्विस्तम्मृज्याद्भिरंश्युद्वयाप्रपूर्वे प्रचिपेत् ॥ २६ ॥

तद्यज्ञवास्तु ॥ २७ ॥

तत् पूर्वस्त्रोक्तं कर्म यज्ञवास्तु । संज्ञा व्यवहाराथी॥ २०॥
भाव वर्श पूर्णमासादि याग में और एक कार्य करना पड़ता है
उसको 'यज्ञवास्तु' कहते हैं। वह पूर्वोक्त प्रकारसे समिद् आधान प्रभृति
पर्युच्चण तक कर्म के पीछे किया जायगा। जैसे आस्तृत कुशों में एक
मुट्ठी कुश लेकर आज्य या चरु में अप्र, मध्य, मूल, इस क्रम से 'अक्त'
रिहाणा' मन्त्र को पढ़के तीन वार जल सींचे। उसके अनन्तर जल से
सिंचन करके 'यः पश्चामधिपतिः' इत्यादि मन्त्र पढ़कर उसे अमिन
में छोड़ देवे॥ २६॥ २०॥

सर्वत्र कुर्यात् ॥ २८ ॥

समिद्दर्भवत्सु कर्मसु सर्वत्र कुर्यात् । ऋध्याहाराहिसद्धे कुर्यादिति वामदेव्यगानार्थम् ॥ २८॥

भा०-सिमद् आधान और कुश वाले सब ही कमों में उक्त विधि करे।। २८।।

हिवरुच्छिष्टमुदगुद्रास्य ब्रह्मणं दद्यात् ॥ २९ ॥

ह्विर्मह्णमाज्यव्युदासार्थम् । उच्छिष्ठप्रमिति स्वयं किञ्चित्प्रा-श्यावशिष्टस्य दानार्थम् । पूर्वमेबोदग्देशस्थितत्वे सिद्धे उदग्यह्णमुद्ग्दे-शात्स्थाल्या सदोद्वासनार्थं, अन्यथा स्थाल्या स्रोदनस्योद्वासनमार्थं-क्येत । चतुर्ण्येव सिद्धे द्वादिति स्वयं अग्रत्वेऽप्यन्यस्तै दानार्थम् ॥ २६॥

भाश्यक्ष का शेष कार्य कहा जाता है। पहिले इस महात्र्या-हृति होम के पीछे बचे हुये चरु की अग्नि के उतर दिशा में रखकर उसी चरुस्थाली से दूसरे पात्र में चरु लेकर ब्रह्मा नामक ऋविज की देवे।। २६।।

पूर्णपात्रं दक्षिणा ॥ ३० ॥

श्रोदनेन तर्डु हैर्वा तद्मावे फलैर्वा सम्पूर्ण पात्रं त्रझ्णे द्विणां द्यान् । स च तृष्णीं श्रोमिति वा प्रतिगृह्वीयान् ॥ ३० ॥

भा०-तब भात या चावल या उसके अभाव में फलों से भरा पूर्ण पात्र त्राझण को दिवा में देवे और ब्राह्मण चुपचाप या 'श्रोम' कहकर उसकी ब्रह्मण करे।। ३०॥

यथोत्साहं वा ॥ ३१ ॥

यथा ब्रह्मा उत्साही भवति तथा द्यात्। तद्भिल्पितं द्यादि-त्यर्थः । स्त्राज्यतन्त्रेष्विप यथीत्साहमेव द्विणा ॥ ३१ ॥ इति खादिर गृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीयस्य पटलस्य

प्रथमः खर्डः ॥२।१॥

प्रथमः खर्चना स्वर्गास्य स्वित्वार स्राभिलिय पदार्थ भा०-या ब्रह्मा को उनकी इच्छानुसार स्राभिलिय पदार्थ दिचिगा देवे ॥ ३१ ॥ इति खादिरगृह्मसूत्र वृत्ति में द्वितीय पटल के प्रथम

खरड का भाषानुबाद समाप्त हुन्ना ॥ २। १। ३१॥

प्रकृतस्य प्रधानदेवता त्राह—

आग्नेयस्थालीपाकोऽनाहिताग्नेर्दर्शपूर्णमास्योः ॥ १ ॥

गृहस्थस्यानाहिताग्नेर्द्रापृर्णमासयोराग्नेयस्थालीपाकः । 'श्रमये त्वा जुब्दं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'श्रमये स्वाहा' इति होमः ॥ १॥ भा०—यदि यजमान श्रनाहिताग्नि गृहस्थ हो तो उपको दर्शपूर्ण मास याग के लिये "श्राग्नेयस्थालीपाक होगा और "श्रग्नये त्वा जुब्दं निर्वपामि मंत्र से निर्वाप करे श्रौर "श्रग्नये स्वाहा" मन्त्र से होस करे ॥ १॥

अभीषोमीयः पौर्णमास्यामाहिताग्नेः ॥ २ ॥

'अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'अग्नीषो-माभ्यां स्वाहा' इति होमः ॥ २॥

भाव-त्रौर यदि यजमान त्राग्निहोत्री हो तो "त्राग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि " मन्त्र से निर्वाप करे। त्रौर 'त्राग्नीषोमाभ्यां स्वाहा' मन्त्र से होम करे॥ २॥

ऐन्द्रो माहेन्द्रो वैन्द्राम्रो वाडमावास्यायाम् ॥ ३ ॥

इष्टिबद्विनिवेशः । 'इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति 'महेन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति 'इन्द्राग्निभगं त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'इन्द्राय स्वाहा, महेन्द्राय स्वाहा, इन्द्राग्निभयां स्वाहा' इति होमः ॥ ३ ॥

भा०-"इन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि" "महेन्द्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि" "इन्द्राग्नीभ्यांत्वा जुष्टं निर्वपामि"मन्त्रों से निर्वाप करे। और "इन्द्राय स्वाहा" "महेन्द्राय स्वाहा" "इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहां" मन्त्रों से होम करे। या दर्श या अमावस्या याग में यह विधि करे॥३॥

यथा वाऽनाहिताग्नेर ॥ ४ ॥

दर्शे च पौर्णमासे चानाहिताग्नेर्यथा तथेत्यर्थः ॥ ४॥

भा॰-या दर्श और पूर्णमास याग में ऋहितारिन और ऋना-हितारिन गृहस्थ दोनों यजमान एक ही प्रकार से करे।। ४॥ सर्ववदः पातराहुतेस्स्थानम् ॥ ५ ॥

सर्विमिति पूर्वोद्धासम्भवे श्रपराह्वे ऽपि होमार्थम् ॥ ४॥ भा०-यदि प्रातःकाल की श्राहुति समय पर कारण वश न कर सके तो दिन के किसी भाग में कर सकता है॥ ४॥

रात्रिस्सायमाहुते: ॥ ६ ॥

स्पष्टम् ॥ ६ ॥

भा०-इसी प्रकार यदि सायंकाल की आहुति समय पर न कर सके तो सारी रात्रि में किसी समय कर सकता है।। ६।।

सर्वीऽपरपक्षः पौर्णमासस्य ॥ ७ ॥

सर्व इत्युपकान्तस्य पूर्वाह्वातिक्रमेऽप्यपराह्वे समाप्त्यर्थम्, तदतिक्रमेऽपि रात्रौ । त्रजुपक्रान्तस्य तु स्वकाले 'त्रपराह्वे स्नात्वा' इत्याग्रहरन्तरेऽपि भवत्येव ॥ ७॥

भा०-अौर पूर्णमासी से अमावस्या के पूर्व दिन तक १४ दिनों में से चाहे जिस किसी दिन हो पूर्णमास याग हो सकता है यदि का-रणवश समय पर न हो सका हो ॥ ७॥

पूर्वपक्षो दार्शस्य ॥ ८॥

सर्व इत्यनुवर्तते । त्रापत्काला एते, त्रन्यथा 'त्रस्तिमते होमः' इत्यादेवेंयथ्यप्रसङ्गात् । उत्तरहोमोपक्रमकालात् प्रागेवेते कालाः त्राप-त्कालत्वाच्च । यथासम्भवं न कालोत्कर्षः कार्यः ॥ = ॥

भा०-अौर अमावास्या से पूर्णमासी के पूर्व दिन तक १४ दिनों में से चाहे जिस दिन हो "दर्श या अमावास्या याग" हो सकेगा ॥॥

अभोजनेन संततुयादित्येके ॥ ९ ॥

स्वकालात्यये अभोजनेन तत्कार्यसिद्धिरित्यन्ये आचार्या आहुः। आ स्वकालात्ययादभोजनेन तत्कार्यसिद्धिरित्यर्थः। वाक्यशेषात्सिद्धे सन्तनुयादित्यविच्छेदस्य विविच्चतत्वं दर्शयति। अतः कालात्ययेऽपि प्रायश्चित्तं कृत्वेवोत्तरस्य करणम्। अधिकारैक्ये सित सन्ध्योपासनादि-लोपेऽप्यभोजनेनापि सन्तानं भवत्येव। वेदोदितानां नित्यानां कर्मणां समितिक्रमे ।
स्नातकत्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् ॥ इति मनुबचनाच ॥ ६॥
भा०-कोई २ त्र्याचार्य कहते हैं कि किसी याग को नियत समय
पर न कर सके तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप उतने समय भोजनका त्याग
करने से उस याग का फल होगा ॥ ६॥

श्रविद्यमाने हन्ये यित्तयानां फलानि जुहुयात् ॥ १०॥ श्रीपासनहोमेऽग्निपकान्यपकानि वा। वैश्वदेवे पकान्येव। दशंपूर्णमासयोनिर्वापादि कृत्वा॥ १०॥

भा०-यदि होमीय पदार्थ श्रजादि कारणवश इकट्ठा न कर सके उससे हानि नहीं। फल से भी हबन हो सकता है।। १०॥

पलाशानि वा ११

फलाभावे यिक्रयानां पर्णानि वा जुहुयात् । पूर्ववत्पाकनियमः ॥११॥ भा०-यदि फल भी न हो सके तो पलाश के पत्तों या उसकी लकड़ी से हवन करे ॥ ११॥

अपो वा ॥ १२ ॥

सर्वत्रापां प्रचालनं श्रपणं च नास्ति त्र्यर्थलोपात् ॥ १२ ॥ भा०-यदि पलाश भी न मिल सके तो केवल जल ही से हवन करे ॥ १२ ॥

हुतं हि ॥ १३ ॥

हिशन्दो हेतौ। यस्मादापत्काले मुख्यद्रञ्यालाभनिमित्तगौण-द्रन्ये च हुते हुतमेव भवति त्र्यतो न तत्र वैगुण्यनिमित्तं प्रायश्चित्त-मित्यर्थः ॥१३॥ सन्तनुयादित्युक्तं, कथमहुतस्य सन्तानमित्यत त्र्याह—

भा०-जिस कारण नित्यं कर्म का त्याग सामग्री के अभाव में न हो इस लिये आचार्य ने आपत काल में जल तक से हवन करने को लिखा है। घृत के हवन करने से जो फल होता है वही फल अन्यान्य पदार्थों से भी हो सकता है॥ १३॥

प्रायश्चित्तमहुतस्य ॥ १४ ॥

श्रविपन्नकालस्य प्रायश्चित्तं सन्तानार्थं भवतीत्यर्थः । प्रायश्चित्तं

तु प्राजापत्यायुक्तमेव । सूत्रान्तरमतात्प्रतिहोमं वा कुर्यात् ॥ १४॥ भा०-- क्योंकि यदि उक्त आपत्कालीय पदार्थों से भी हवन न

कर सके तो हवन त्याग करने से प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ॥ १४॥

श्राज्यं जुहुयाद्धविषोऽनादेशे ॥ १५ ॥

त्र्याज्य जुहुयादनादेशे इति सिद्धे हिवंप इति हिवंपस्संस्कारमिप 'शृतमभिघार्य' इत्यादिष्वाज्यमेव स्यादित्येवमर्थम् ॥ १५॥

भा० ह्वन करों में जहां यह नहीं लिखा है कि अमुक पदार्थ से हवन करे, वहां आज्य से हवन करे॥ १४॥

देवतामन्त्रानादेशे ॥ १६॥

यहेवत्यं हविरुक्तं तहेवताहोममन्त्रस्यात् । 'श्रप्नये स्वाहा' इति वत् ॥ १६॥

भा०—जिस होम कर्म में आहुति का मन्त्र उपदिष्ट न हो वहां जिस देवता के लिये हवन किया जावे उन्हों देवता का मन्त्र सममना चाहिये॥ १६॥

प्रथमगर्भे तृतीये मासि पुंसवनम् ॥ १७ ॥

सर्वगर्भाथांऽयं संस्कारः आधारसंस्कारद्वारेण सकुदेव क्रियते।
भार्यान्तरे तु कर्त्तव्यमेव प्रथमगर्भे। दर्शादूष्वमाद्शिदेको मासः। यत्र
कच दिनेऽप्याहिते गर्भे स एको मासो गण्यितव्यः। संज्ञाव्यवहारार्था।
कृत्तनाप्रावेव। मासीति मास इत्यर्थः। अत्र केचित् अतिक्रान्तेऽपि
सुख्यकाले प्रसवात् प्राक्षालातिकमप्रायश्चित्तं कृत्वा कर्तव्यमेवेत्याहुः,
उपनयने दर्शनात्, तेन च स्मृतिषु तुल्यवद्रण्नात्, कासुचित्स्मृतिषु
कालानिर्देशेन विधानादापत्कल्पत्याऽभ्यतुज्ञानं सर्वदा संस्काराणामस्रियेवेत्याहुः। जननादृष्वं तु द्वाराभावात् प्रायश्चित्तेव जातं संस्कृर्यादेकदेशेऽग्रौ। गर्भान्तरार्थं तु द्वितीये गर्भे कुर्यादेव। अपरे तु कालात्यये
अधिकाराभावात् प्रायश्चित्तमेवाहुः। पूर्व एव तुपन्तः श्रेयान्। 'अथापि
लोपसंशये लोपाद्लोपो न्यायतरः' इति निदानकारोऽप्याह ।। १७॥

भा०—जिस मास में गर्भाधान हो, उस मास से तीसरे मास के आदि पन्न के निकट ही पुंसवन नामक संस्कार काल जावो ॥ १७॥

स्नातामहतेनाच्छाद्य हुत्वा पतिः पृष्ठतस्तिष्ठंत् ॥ १८ ॥

श्रहतेन श्रधरेणोत्तरीयेण च। ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा वधूं दृष्टि-णतो दर्भेपूपवेश्य प्रपदान्तं कृत्वाऽन्वारच्यायां व्याहृतिभिस्तिसृभिराज्यं हुत्वा पुनश्च हुत्वा वध्वाः पश्चाइभेंषुतिष्ठेत्। पतिरिति भर्तुरभावे पाल-नाधिकृतनियमार्थम्। भर्तुरन्यः कुर्वन् प्रणीते लौकिके वा कुर्यात् ॥१न॥

भा?—त्रातःकाल उत्तराम कुशासन पर उस तीन मास की गर्भ वाली वधू को वैठावे और मस्तक आदि साराशरीर जल में आप्लुत कर अप्नि के पश्चिम और डाले हुये उत्तराम कुश के आसन पर वैठावे और उसके पीठ की और अर्थात् उसको गोद में लेकर पति भी वैठे॥१८॥

दक्षिणमंसमन्वत्रमृश्यान्तर्हितं नाभिदेशगभिमृशेत्पुमांसा विति ॥ १९ ॥

श्रन्विति वधूमनुगतः प्रह्वीभूत इत्यर्थः । वध्या श्रांतमन्ववसृश्य वस्नादिनाऽनन्तर्हितमभिमृशन्नेव पाणिना नानि प्रापय्य सकलमेवीद्रं मन्त्रेणाभिमृशेत् ॥ १६ ॥

मा०-इसके वाद पति वधू के पीछे वैठकर कन्त्रे को न छूता हुआ हाथ से सम्पूर्ण उदर के साथ नामि मर्शन करे।। १६॥

श्रयापरं न्यत्रोधशुङ्गाग्रुभयतः फलामस्नामामिकिमिषरिसृप्तां त्रिस्सप्तैर्यवैः परिक्रीयोत्थापयेन्मापैर्या सर्वत्रौपधयस्सुमनसो भूत्वाऽस्यां वीर्यं समाधत्तेयं कर्म करिष्यतीति ॥ २०॥

श्रथेत्यानन्तर्याथेंन प्रयोगेक्यमाह । श्रतो नान्तरा त्राह्मण्मोजन्म्म् । श्रपरमिति कर्मान्तरत्वमाह । श्रतो वामदेव्यगानान्तं कृत्या त्रह्मणे दिल्लां द्त्वा वहयमाणकर्म कुर्यात् । कर्मद्वयात्मकमिद्मकं पुंसवनाल्यं कर्म । श्रस्तामां श्रशुष्काम् । न्यप्राधाधिदेवताभ्यः परिक्रीणान्मीत्यनया बुद्य्या सप्तमियंवैमुल्यतया सङ्कल्पितैश्शुङ्गां परितिक्षः प्रकीर्यं शुङ्गामूर्ध्वापां मन्त्रेण विकर्षेत् यथाच्छित्रचेत । यवाभावे मापैः ॥ २०॥

श्राहृत्य वैहायसीं कुर्यात् ॥ २१ ॥ गृहमाहृत्योपर्यनाच्छादिते देशे शुक्कां निद्ध्यात् ॥ २१ ॥ भा०—इस नाभिमर्शन काम के पीछे पुंसवन संस्कार करने में एक काम और भी करना पड़ता है। यह पूर्वोक्त समय में होगा किन्तु जिस दिन नाभि मर्शन हो उसी दिनया उनके दूसरे तीसरे दिन करे इसका नियम नहीं। ईशान कोण में जो कोई वड़ का वृत्त हो उस से शुङ्ग इस प्रकार लेवे कि उस वृत्त के मालिक को २१ यव या २१ उड़द दाम देकर खरीद कर उसे तोड़े। इस शुङ्गा के दोनों बगल फल लगे होना चाहिये, सूखा न हो और उसमें कीड़े न लगे हों। 'इस शुङ्ग को मोल लेते समय आगे कहे जाने वाले सात मन्त्रों को पढ़कर तब खरीदे। मन्त्र—

हे शुक्क त्वं यदि सौमी असि ताई सोमाय राक्क त्वा परिक्रीणामि॥ १ त्वं यदि वाक्रणी असि ताई तस्मै वरुणाय राक्करवत्वा परिक्रीणामि॥ २ त्वं यदि वसुभ्यः असि ताई वसुभ्यः एव त्वा परिक्रीणामि॥ ३ त्वं यदि कद्रेभ्यः असि ताई कद्रभ्यः एवत्त्वा परिक्रीणामि॥ ४ त्वं यदि आदित्येभ्यः असि ताई आदित्येभ्य एवत्वा परिक्रीणामि॥ ४ त्वं यदि मरुद्भयः असि ताई मरुद्भयः एव त्वा परिक्रीणामि॥ ६ त्वं यदि वर्वेभ्यो देवेभ्यः असि ताई वर्वेभ्यः एव त्वा परिक्रीणामि॥ ६ त्वं यदि विरवेभ्यो देवेभ्यः असि ताई विरवेभ्यो देवेभ्यः प्व त्वा परिक्रीणामि॥ ७॥ अव वत्थापन मन्त्र कहते हैं—हे स्रोपध्यः यूयं सुमन्तः अस्यां वध्यां वीर्यं समायत्त। इयं वयूः गर्भप्रसवनं करिष्यति॥ अर्थात्—उसके वाद इन मन्त्रों को पद्कर उस शुक्के को वृत्तसे उखाइ या तोड लोवे यह कह कर कि हे स्रोपिथ गण! तुम सव प्रसन्न होकर इस वहू में वीर्य सायन करो। जिससे यह वयू कष्टरिहत हो गर्भ प्रसव करे। उस उखाड़े हुये शुक्के को तृण से ढाक कर स्रमर लत्ती या सूद्म जटामांसी संग्रह कर इसकी रक्षा करे॥ २०॥ २१॥

कुमारी ब्रह्मचारी व्रतवती वा ब्राह्मणी पेषयेद्वरत्याहरन्ती॥२३॥ कुमारी च ब्राह्मणी। ब्रह्मचारी च ब्राह्मणः। वाग्यता ब्राह्मणी वा दृपत्पुत्रं प्रतीचीं दिशं प्रत्यप्रत्याकर्षन्ती पेपयेत्॥

भा०-इसके अनन्तर लोढ़ी शीलवट को अच्छी प्रकार धोकर कोई ब्रह्मचारी (गृहस्थ भी जो केवल ऋतुकाल में अपनी भार्या के पास सम्मोग करता हो ) या कोई पतित्रता या त्राह्मण वंश की कोई कुमारी उस शुक्के को शीलवट पर घर निरन्तर पीसे। अर्थात् पीसते ही समय श्रोपची को सब गन्य हवा द्वारा खिंच न जावे अतएव शीव ही पीस लेवे ॥ २२॥

स्नातां संवेश्य दक्षिणे नासिकास्रोतस्यासिञ्चेत् पुमान-ग्रिरिति ॥ २३ ॥

पुनस्तातामग्नेः पश्चात् प्राविशरसं द्रभेषु संवेशय शायित्वा तस्याः द्विणे नासिकारन्त्रे शुङ्गारसमासिञ्चेत्। सा च तं रसमुद्रस्थं कुर्यात्। त्रथ त्राह्मणमोजनम्॥ २३॥

मा०-श्रीर प्रातःकाल बहू उत्तराय कुशाश्रों पर बैठकर माथे तक जल में गीता लगाकर स्तान कर लेवे श्रीर श्राग्त के पश्चिम भाग में उत्तराय डाले हुये कुशासन पर पूर्व की श्रीर शिर कर जागती हुई लेटी रहे। श्रीर पित उन्नके पीछे रहकर श्रनामिका श्रीर श्रॅगूठे से पीसा हुआ शुङ्ग लेकर उसके दहिने नाक के छेद में उसका रस डाले या सुँघावे। सुंघाते समय "पुमानिनः पुमानिन्द्रः" मन्त्र को पढ़ते हुये पित श्रपने इष्ट का स्मरण करे॥ २३॥

अथास्याश्रतुर्थे मासि षष्ठे या सीमन्तोत्रयनम् ॥ २४ ॥ अथेत्यक्रतेऽपि तृतीये मासि पुंसवने अस्मिन काले पुंसवनं कृत्वा सीमन्तकरणार्थम् । अस्या इति प्रथमगर्भनियमार्थम् ॥ २४ ॥

भा०-श्रव सीमन्तोन्नयन संस्कार को कहते हैं। यह संस्कार प्रथम ही गर्भ में किया जाता है। इसका समय गर्भघान से चौथे या छठे मास में होता है॥ २४॥

स्नातामहतेनाच्छाद्य हुत्वा पतिः पृष्ठतस्तिष्ठचातुपूर्वया फज्ञद्वक्षशाखया सक्तत्सीमन्तम्रभयेत् त्रिश्श्वेतया च शलस्या-ऽयमूर्जावतो द्वक्ष इति ॥ २५ ॥

अनुपूर्वयेति न्यमोधशुङ्गाधर्मयुक्तयेत्यर्थः । फलवृत् उदुम्बरः 'क्रार्या उदुम्बरः' इति श्रुतेः । 'अयमूर्जावतो वृत्तः' इति च मन्त्रवर्णात्।

तद्वदेव शाखामाहृत्य वैहायसों कृत्वा पुंसवनवत् पृष्ठतः स्थानान्तं कृत्वा तया शाखया मूर्धिन गतान् वध्वाः केशान् प्रत्यक्कमुन्नयेत् । 'कृणोिमि' इति मन्त्रान्तः । ततिस्त्रपु देशेषु श्वेतया वराहसूच्या तद्वदेव 'राकाम-हम्' इत्युन्नयेत् । 'रराणा' इति मन्त्रान्तः ॥ २४ ॥

वटसरः स्थालीपाकः ॥२६॥

कृतरः तिलमिशः पाकधर्मयुक्तो भवेत् चौते 'वृथा पकः' इति विशेषणात् । निर्वापमन्त्रस्तु नास्ति देवताऽभावात् ॥ २६ ॥ उत्तर घृतमवेक्षतीं पृच्छेत किं पश्यसीति ॥ २७ ॥ स्पष्टम् । उत्तरे घृते यथा छाया दृश्यते तथा घृतसेकः ॥ २७ ॥ प्रजामिति वाचयेत् ॥ २८ ॥

पतिः । त्रयोपिरप्राद्धोमादि त्राह्मण्मोजनान्तम् । वधूः स्थाली-पाकमश्रीयादिति गृह्यान्तरोक्तम् ॥ २८॥

भा०-प्रातःकाल उत्तराम विद्याये हुए कुश के आसत पर वहू को बैठाकर साथे तक उसे नहवा कर अग्नि के पश्चिम में विद्याये हुए उत्तरात्र कुशासन पर पूर्व मुंह उसे बैंठाये, पति भी उसके पीछे रहे। अनन्तर यज्ञगूलर का गुच्छा श्रौर एक शलाटू का, उस बहू के श्रांचल में या शरीर के जिस किसी वांधने योग्य श्रङ्ग में वांध देवे। दोनों गुच्छात्र्यों को वांधते समय "त्र्यमूर्जावतो वृत्तः" मन्त्र को पढ़े उसके अनन्तर सार गर्भ सूखा कुशा जो समृत हो उससे निर्मित पिञ्जुली से उस बधू का केश सम्हारे "भू:" मंत्र से पहिली वार "भुवः" मंत्र से दूसरी वार त्रौर "स्वः" मन्त्र से तीसरी वार सीमन्त के केश आदि को पिंजुली से वढ़ा देवे। "येनाहिते" मन्त्र को पढ़ता हुआ जिस 'शर' का वाण तप्यार होता हो उसी शर से सीमन्त को वीच में चीड़कर शोभायमान करे। 'राकामहम्' मन्त्र का पाठ करके जिससे ही के कांटे में तीन जगह श्वेत हो ऐसे कांटे से छोटे छोटे केशों को ऊपर को उठा देवे। उसके बाद घी का सँवरा देकर आग़ा का पका तिल तण्डुल की बहू को दिखलावे और उसे पूछे कि तुम उसनें क्या देखती हो —वह कहे कि "प्रजा" देखती हूं, इसके पश्चार उस दिन बह उसी को भोजन करे॥ २४॥ २६॥ २७॥ २८॥

### प्रतिष्ठिते वस्तौ सोष्यन्तीहोमः ॥ २९ ॥

वस्तो गर्भे प्रतिष्ठिते स्वस्थानात् प्रच्युते, प्रोपसर्गस्तिष्ठतिर्गमन-वाचकः । प्रतिगर्भमेतत् जायमानार्थत्वात् । प्रणीतेऽप्रावेतत् । नात्रा-न्वारम्भः श्रतत्संस्कारत्वात् । श्रकृते यदि जननं स्यात् न तत्र पुनः क्रिया 'जनिष्यते' इति मन्त्रलिङ्गात् । तत्राशौचात् अर्ध्वं प्रायश्चित्तेनैव संस्कारः ॥ २६ ॥

भा०-जब प्रसव होते समय योनि के अप्रभाग में गर्भ आ जावे उसी समय यह "शोष्यन्ती होम" संस्कार करे॥ २६॥

या तिरश्चीति द्वाभ्याम् ॥ ३०॥

प्रपंदान्तं कृत्वा व्याहृतिभिस्तिसृभिः हुत्वा 'या तिरश्ची' इति हुत्वा 'विपश्चित्पुच्छम् , इति जुहुयात् ॥ ३०॥

असातिति नाम दध्यात् ॥ ३१ ॥

यदि पुत्रामाभिलिपतं 'विष्णुशर्मानाम' इतिवत् मन्त्रस्थेऽसौ-शब्दे नाम निद्ध्यात्।युग्माच्चरं ब्राह्मणस्य माङ्गल्यं शर्मवत्स्यात्। बल-रच्चान्वितं चत्रियस्य । धनपुष्टिसंयुतं वैश्यस्य । जुगुप्साप्रेष्यसंयुतं शूट्रस्य ॥ ३१ ॥

युग्माचरं त्राह्मणस्य दृष्यचरं चतुरचरम् ।

माङ्गल्यं त्राह्मणस्य स्यात् चित्रयस्य वलान्वितम् ॥
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ।

शर्मवद्त्राह्मणस्य स्यात् राज्ञो रचासमन्वितम् ॥
वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् ॥
इति मनुवचनाच् ॥

भा०-पूर्व उपदेशानुसार अग्नि स्थापनादि परिस्तरण कार्य के पीछे "या तिरश्ची०" मन्त्र से श्रीर श्रीर "विपश्चित् पुच्छमभरत्" मन्त्र से श्राज्य तन्त्र द्वारा दो श्राहुति देवे। उस समय "यदि पुत्र जन्म लेवे, तो यही नाम रक्खूंगा" इस प्रकार मन ही मन एक नाम स्थिर कर रक्खे। श्रर्थात् पुत्र की श्राशा करे॥ ३० । ३१॥

तद्गृह्मम्।। ३२।।

वैदिककर्मार्थमेतत्। व्यावहारिकं स्वन्यदेव गुद्धत्वोक्तेः। नामापरिज्ञाने त्र्याभिचाराग्रसिद्धिः फलम्॥ ३२॥

भा?-परंतु वह नाम गुप्त रक्ले किसी से प्रकट न करे ॥३२॥
पाङ नाभिकुन्तनात् स्तनदानाच्च ब्रीहियनौ पेषयेच्लुङ्गाद्वता ॥ ३३ ॥

प्रागिति विसमासः प्राङ्नाभिक्तन्तनादसम्भवे स्तनदानात्प्राक् वर्तुम् । द्विवचनाद्वन्यक्तिद्वयम् । जात्यभिप्रायेणेति केचित् । शुङ्गावृता शुङ्गाप्रकारेण 'कुमारी ब्रह्मचारी अतवती वा ब्राह्मणी पेषयेदप्रत्याद्द-रन्ती' ॥ ३३ ॥

अङ्गष्ठेनानामिकया चादाय कुमारं प्राश्येदियमाइ -ति ॥ ३४ ॥

त्रंगुष्ठानासिकाभ्यामिति सिद्धे पृथग्महर्णं विषयद्वयसूचना-र्थम् । त्रज्ञप्राशनमध्याभ्यामेवेति । चशब्दोऽन्नप्राशनेऽध्येतन्मन्त्रप्राप-णार्थः ॥ ३४ ॥

सर्भिश्र मेघां त इति ॥ ३५॥

चशब्दः पूर्ववत् मेधां ते मित्रावरुणामिति मन्त्रनियमार्थः, अन्नप्राशने आभ्यां मन्त्राभ्यां अन्नमेव प्राशयेत्। कालस्तु 'वष्ठेऽन्न-प्राशनं मासे' इति स्मृत्यन्तरात् गम्यते। केचित्—चशब्दो हिरण्यमञ्जन्तसमुच्चयार्थ इत्याहुः । तथाच मनुः—'हिरण्यमञ्जसर्पिभ्याम् ' इति ॥ ३४॥

इति स्नादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीयस्य पटलस्य द्वितीयः स्नरहः ॥ २ । २ ॥

भा०-पूर्व में शुक्त पीसने का जो नियम कहा गया है उसी प्रकार धान्यतर बुल और यवतर बुल को पीसकर नाभि छेदन के पहिले दिहने हाथ से अनोभिका और ऋंगूठे से प्रहरण करके 'यहीं ईश्वर की आहा है'-मन्त्र पढ़कर उस नव बालक के जीभ में चटा देवे और

बुद्धि बढ़ने की इच्छा से "मेथान्ते मित्रावरुणौ०" मंत्र और "सदस-स्पतिमद्भुतम्०" मन्त्र को पढ़कर दो बार उसी प्रकार अंगूठा अना-मिका अंगुली से घी भी चटावे। या सोने की शलाका के अग्रभाग से कुमार के मुंह में देवे और तक नाल काट कर स्तन पिलावे॥ ३३॥ ३४॥ ३५॥

इति सादिरगृह्यसूत्रवृत्ति के दूसरे पटल के दूसरे खण्ड का भावानुवाद समाप्त हुआ।। २॥२॥

जननाज्ज्योत्स्ने तृतीये तृतीयायां प्रातः स्नाप्य कुमार्भ-स्तमिते शान्तासु दिशु विता चन्द्रयसमुपतिष्ठेत् प्राञ्जितिः ॥ १॥

मातुः पितुर्वा रुच्या यदा कदाचित् शिशोर्निष्क्रमणे प्राप्ते तदुपक्रमनियमोऽयम् । देवान्मानुषाद्वा हेतोः निष्क्रमणे कृतेऽपि संस्कारार्थमिस्मित् काले कुर्यादेव । एवमुत्तरत्रापि । कालात्यये तक्कि एव न्यायः सर्वेषु संस्कारेषु । ज्योत्स्ना चन्द्रप्रभा तद्योगात् पूर्वपचो ज्योत्स्नः । जननादूष्त्रं ये ज्योत्स्नाः तेषां तृतीये तृतीयायां तिथावित्यर्थः । यदि पूर्वपचे जननं स्यात् नासौ गण्यित्वयः । कृत्स्नस्य जननादृष्त्रं यो ज्याच मनुः—'चतुर्थं मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्' इति । उपस्थानकाले तृतीयानियमः । शान्तासु उपर्वादित्यरिमषु दिच्चपतिष्ठेदिति दर्भेषु तिष्ठेत् चन्द्रामिमुखो वच्यमाण्प्रकारेण कुमारमादाय मन्त्रेश्चन्द्रमसमिमद्ष्यादित्यर्थः ॥ १ ॥

भा०-अव निष्क्रमण संस्कार को कहते हैं। जन्म से तीसरे गुक्त पच की तृतीया तिथि में प्रातःकाल ही नव कुमार को मस्तक तक धोकर स्नान करावे। इसके पीछे सूर्यास्त के वाद अर्थात् ऐसे समय में जब कि सूर्य मण्डल की लालिमा तक न दीख पड़े कुमार का पिता पुत्र को लेने के लिये दोनों अञ्जलि पसार कर खड़ा रहे।। १।।

शुचिनाऽऽच्छाद्य माना प्रयच्छेदुद्विछरसम् ॥ २ ॥ यम्त्रेणाच्छाच द्विणतः स्थित्वा कुमारं पित्रे प्रयच्छेत् माता ॥ २ ॥ भा०-और उसकी माता कुमार को साफ वससे ढाप कर अपने स्वामी के दक्षिण ओर आकर वालक को उत्तर शिरा और उत्तानभाव से उसकी अक्षिल में देवे ॥ २॥

श्रतुपूर्वं गत्वोत्तरतरितष्ठेत् ॥ ३ ॥

पूर्वशब्दो दिग्वाची । अनु पृष्ठं गत्वा पितुरुत्तरतः प्रत्यङ्मुखी दुर्भेषु तिष्ठेन्माता ॥ ३ ॥

भा०-ऋौर स्वयं अपने पीठ पर होकर वाम दिशा में आकर पिता के उत्तर भाग में पश्चिम मुंह हो कुशों पर खड़ी रहे॥ ३॥

यत्ते सुसीम इति तिस्रभिरुपस्थायोदञ्चं मात्रे पदाय यदहः इत्यपामञ्जलिमवसिञ्चेत् ॥ ४ ॥

उद्द्धं उदिक्छरसम् । प्रातःकाले पात्रेण पूर्णं गृहोता आपः स्युस्ताभिद्भेषु द्विणतस्तिष्ठन् ब्राह्मणोऽञ्जलि पूरयेत् , तं भूमाववसि- क्वेत ॥ ४॥

भा०—इसके अनन्तर कुमार के साथ पिता "यत्ते सुसीमे' और "यथा अयं न प्रमीयेत पुत्रो जिनक्या अधि' तक तीन मन्त्रों का जप करके प्रात काल में पात्र में पूरा जल लेकर कुशासन पर खड़ा हुआ बाह्मण अञ्जलि को भर देवे और उसको जमीन में सीचे॥ ॥॥

द्विस्तूच्णीम् ॥ ५ ॥

श्रमन्त्रकं द्विरवसिङ्चेत् ॥ ४॥ भा०—श्रौर दो वार विना मंत्र पढ़े जल सीचे ॥ ४॥

जननादृर्ध्वं दशरात्राच्छतरात्रात्संवत्सराद्वा नाम कुर्यात् ॥ ६ ॥

जननिवसादृष्यं यो दशरात्रः तस्मादृष्यं यदहस्तस्मित्रित्यर्थः । जननिवसादृष्यं यो दशरात्रः तस्मादृष्यं यदहस्तस्मित्रित्यर्थः । ह्याद्रशेऽहनीति यावत् । एवमुत्तरयोः पत्तयोः । नात्रोदगयनपूर्वपद्यरः, कित्तरसम्भवस्य नियतत्वात् । श्रसम्भवेऽपि न तद्वरोन कालविनिवेशः, वैकल्यप्रसङ्गात् ॥ ६ ॥

श्रव नाम करण संस्कार को कहते हैं। जन्म दिन से दश दिन या १०० दिन या संवत्सर वीतने पर ग्यारहवें दिन में नव कुमार का नाम करण करे॥ ६॥

स्नाप्य कुनारं करिष्यत उपविष्टस्य शुचिनाऽऽच्छात्र माता प्रयच्छेरुदक्छिरसम् ॥ ७॥

होमारम्भात्पूर्वं दर्भेपूपविष्टस्य शुचिना वस्त्रे गाच्छाद्य दक्षिणत उपवि य प्रयच्छेत्तत् ॥ ७ ॥

श्रनुपृष्ठं गत्रोत्तरत उपविशेत् ॥ ८ ॥

द्रभें बुमाता।। पा

भा०—होम कार्य के आरम्भ करने के पहिले दुशासन पर पूर्व मुँह बैठे कुमार की प्रसूति साफ वस्त्र में शिशु को ढांक कर ले आवे और नाम करण संस्कार करने के लिये प्रवृत्त दुमार के पिता या दूसरे ब्राह्मण के दिहने ओर आकर उत्तर शिरा और उत्तान भाव से उसे देकर नाम करण करने में प्रवृत्त पिता या ब्राह्मण के पीठ के रास्ते आ कर कुश पुक्ष पर माता बैठे॥ ७॥ ८॥

हुत्वा कोसीति तस्य ग्रुरुयान् प्राणानिषम्श्रोत् ॥ ९ ॥ उद्दिक्ष्यरसं कुमारं स्वाङ्के धारयन् प्रपदान्तं कृत्वा द्विस्तिसृभि-वर्गाहृतिभिर्द्वुत्वा कुमारस्य चत्रुपी श्रोत्रे नासिके चाभिमृशेत्॥ ६॥

असाविति नाम कुर्यात्तदेव मन्त्रान्ते ॥ १०॥

यत्सोष्यन्तीहोमे तदेव । परिद्दातु विष्णुशर्मित्रितिवन् कुर्यान्। मन्त्रान्तेऽसौशब्दे न मध्ये ॥ १०॥

मात्रे॥ ११॥

प्रयच्छेदुदक्छिरसमिति शेषः ॥ ५१॥

प्रथममाख्याय ॥ १२ ॥

मात्र इत्यनुवर्तते । प्रथमशाब्दस्य द्वितीयापेत्तत्वात् प्रथमं गुह्ये नाम मातुरुक्तवा द्वितीयमपि व्यावहारिकं नामेदानीं व्र्यादित्यर्थः । ततो आद्याग्रभोजनम् ॥ १२ ॥ भा०--इसके पश्चात् नामकरण संस्कार होने वालं कुमार को गोद् में लेकर पहिले प्रजापित देवता की तुष्टिके लिये होम करे। पीछे जिस तिथिमें कुमारका जन्म हुआ है, उस तिथि का नाम लेकर दूसरी आहुति देवे। उसके पश्चात् जिस नज्ञत्र में कुमार का जन्म हुआ है, उसका नाम कहकर तीसरी आहुति देवे। फिर उत यालक के मुख में हाथ देकर उसके दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों (नासिका के) ख्रिद्रों का अभिमर्शन करे और "कोऽिस कतमोऽिस" मंत्र को पढ़े और मंत्र पढ़ते समय दो स्थानों में श्वित "असी" यह के बदले नया नाम रक्ख के व्यवहार करे। इस नाम के आदि अज्ञर घोष वर्ण मध्य में अन्तस्थ वर्ण और अन्तिम वर्ण दीर्घ या विसर्ग होगा। विरोपतः इस नाम में तिद्वित न रहे। कन्या सन्तान का नाम जोड़े अज्ञर अन्त में और दकारान्त न हो यही देखना चाहिये। इस प्रकार नाम युक्त मंत्र के दोनों स्थानों में "असी" पद की जगह मिलाकर पाठ समाप्त होने पर सबसे पहिले उसकी माता को। गुप्त और व्यावहारिक दोनों नाम बतलावे॥ १। १०। ११। १२॥

विषोष्यङ्गादंगादिति पुत्रस्य मूर्यानं पिगृह्वी-यात् ॥ १३ ॥

प्रागान्तरे त्रिरात्रमुपिश्वा यदाऽऽगच्छति तदा परितः उभाभ्यां हस्ताभ्यां गृह्णीयात्। विशोज्याङ्गादितिप्राप्ते बहुलवचनाद्भस्वत्त्र मस्य वहुविषयत्वं द्योतियितुम् । श्रतः प्रतिपुत्रमेतिद्वप्रोष्यकर्त्तव्यम् ।१३॥

पश्चनां त्येत्यभिजिघ्रेत् ॥ १४ ॥

मूर्धन्यभिजिन्ने त्। असौरान्दे विष्णुशर्मिन्नितिवत त्र्यात्।।
भा०—अपने प्राम से वाहर जाकर दूसरे प्राम में तीन रात्रि
रहकर जव अपने गांव में पिता वापिस तव अपने पुत्र को दोनों
हाथों से "अङ्गादङ्गात् सम्भविस" इन तीन मन्तों को पढ़कर दोनों
हाथों से पुत्र का मस्तक पकड़ कर "पश्चनां त्वा०" मंत्र पढ़कर
सूंचे॥ १३॥ १४॥

तूष्णीं स्त्रियाः ॥ १५ ॥ जातकर्मादि चौलान्तं मन्त्रवर्जं स्त्रियाः कुर्यान् । साङ्गस्तु होमो निवर्तते मन्त्रादिलोपे देवतोहेशस्यापि लोपान् ।

मानवेऽप्युक्तम्— स्रमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः । संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकात्तं यथाकमम् ॥ इति ॥

उपनयनं तु नाम्ति तत्स्थानापन्नतया विवाहस्य रमरणात्। त्रातो विवाहात्प्रागनुपनीततुल्यमाचरेत्। ऊर्ध्वं तु भर्तुतुल्यं 'सहधर्म-श्चर्यताप्' इति वचनात्। उपनयनाभावान्नाध्ययनम् । तद्भावात्तद्र्थां नियमा जपाश्च न सन्ति । त्राइत्य विहिताम्तु वचनवलाद्भद्दन्त्ये-वेति॥ १४॥

भा०—कन्या का यह संस्कार विना मन्त्र पढ़े होगा ।। १४ ॥ तृतीये वर्षे चौलम् ।। १६ ॥

श्रत्र जननादिमासगणनया द्वादशमातास्तंवत्सरः, न

चैत्रादिः ॥ १६॥

भा०—अव चूड़ाकरण संस्कार को कहते हैं। यह संस्कार बातक या बालिका के जन्म से तीसरे वर्ष में करे।। १६॥

तत्र नापित उष्णोदकमादर्शः क्षुरो चौदुम्बरः पिञ्जूरय इति दक्षिणतः ॥ १७॥

नापितो वपनकर्ता आयसत्तुरपाणिः 'आयसेन प्रच्छिद्य' इति वचनात । उष्णोदकं कंसपात्रपूर्णं, आदर्शः, त्तुरः औदुम्बरो वा विकल्प्यते, दर्भपिञ्जल्य एकविंशतिः एतान्यग्नेर्द्त्तिणतः स्यः ॥ १७ ॥

भाः —नापित श्रम्भिके दिन्निण भाग में गर्म जल, कटोरा जल भरा, दर्पणः चुरा, गूलर का काष्ट्र का चुरा, कुश की पिञ्जुली २१ रक्ले ॥ १७॥

त्रानहुरो गोगयः कुसरस्यालीपाको दृयापक इत्युत्तरतः ॥ १८ ॥ पुंगवशकृत्, पाकथर्मरिहतोऽग्न्यन्तरशृतिहतलिम् स्थाली-पाकश्चाग्नेहत्तरतः स्याताम् ॥ ६८ ॥

भाश-श्रीर श्रिप्त के उत्तर भाग में वैल का गोवर श्रमन्त्र पक कृसर रक्ते ॥ १८॥

माता च कुपारमादाय ॥ १९॥

पृथङ्निर्देशः कर्तुकत्तरतः उपवेशनार्थः । मातुर्न दर्भासनम् । चकारः उत्तरत इत्यस्यानुकर्षणार्थः । एतज्ञापितादिस्थापनं ब्रह्मो-पवेशनार्द्ध्यं स्यात् । एतान्यहोमार्थानि । त्रातः स्त्रिया त्रापि स्युः । श्रव्यावृत्तिरव्यवायश्च तेतां नावश्यं स्याताम् । तथा परिषेचनंऽपि नाभिपरिहरणम् ॥ १६ ॥

भा०—इसके पश्चात् वालक की माता वालक को साफ वर्कों में लपेट कर अग्नि के पीछे उत्तराप्र रक्ते हुये कुशासन पर पूर्व मंह हो बैठे॥ १६॥

हुत्राऽयपागादिति नाितंपेक्षेत्सवितारं ध्यायन् ॥ २०॥ प्रपदान्तं कृत्वा मातृप्रयुक्ते कुमारेऽन्वारव्धे व्याहृतिभि-स्तिष्टिभिर्दत्वा पुनस्समन्तान्ताभिश्चतस्भिर्द्भवा 'अयमागाट्' इति नािपतं प्रेचेत् सवितारं ध्यायन् ॥ २०॥

भा० - प्रपदान्त तक सारी किया को करके माता से कुमार के अन्वारव्य तीनों ज्याहतियों द्वारा तीन आहुति और सारी ज्याहति से चौथी आहुति देकर "यह आया" कह कर सूर्य्य भगवान का ध्यान करता हुआ नापित को देखे ॥ २०॥

उन्णेनेत्युष्णोदकं प्रेक्षेद्वायुं ध्यायन् ॥ २१ ॥

वायुं मनसा ध्यायन् ॥ २१ ॥ भा०—श्रौर मन से वायु देवता का ध्यान करता हुआ कांसे के पात्र में 'उद्योन' मन्त्र से गर्म जल को देखे ॥ २१ ॥

श्राप इत्युन्देत् ॥ २२ ॥ दिज्ञणतः केशान् उष्णोदकेन क्लेदंयेत ॥ २२ ॥ भाः — दिहने हाथ से कपुष्टिणका पकड़ कर "आप उन्दन्तु" मन्त्र पढ़के उसे गर्म जल से गीला करे॥ २२॥

विष्णांरित्यादर्शः मेक्षेदौदुम्बरं वा ॥ २३ ॥

स्पष्टम् ॥ २३ ॥

भा०- "विष्णोर्द् अष्ट्रोडिस" मन्त्र पढ़ता हुआ उसमें गर्म जल साँचे और गूलर का चुरा या दर्पण देखे ॥ २३॥

त्रोषयय इति दर्भिवञ्जूलीम्सप्तोधर्गाम श्रमि-निधाय ॥ २४ ॥

केशैस्संहत्य॥ २४॥

भा०—"श्रोपधे त्रायस्वैनं " मन्त्र को पढ़कर सात छुरा की पिक्जुली नीचे को जड़ श्रीर ऊपर को फुनगी इस प्रकार कपुष्टिणका में धारण कराये॥ २४॥

स्त्रित इत्यादर्शेन क्षुरेखौदुम्त्ररेख वा ॥ २५ ॥ दर्भामयुकान् केशानन्यतरेख संयोजयेदित्यर्थः॥ २४॥

भा०—पीछे उसी दर्भ पिंजुली के साथ दहिने कपुष्टिणका आदि बायें हाथ में रक्खकर "स्वधिते भैनं हिंसी॰" मन्त्र पढ़कर दाहिने हाथ में उस गूलर के काठ का जुरा या दर्पण लेकर उसी कपुष्टिणका में अच्छे प्रकार धारण करावे ॥ २४ ॥

येन पूर्वेति दक्षिणतस्त्रः पाश्चं प्रोहेत् ॥ २६ ॥

श्रादरींन चुरेगाौदुम्बरेग वा केशान् दर्भाप्रसंयुक्तांस्त्रिस्सं-मृज्यादित्यर्थः। मन्त्रस्यापि त्रिरावृतिः॥ २६॥

भा॰—श्रौर उसको पूर्व मुंह कर तीन वार चलाकर केश कटेंगे इसको भली भांति तर्क कर विचारे। उस तीन वार के चलाने में एक वार "पेन पूपा॰" श्रौर श्रन्य दो वार में मंत्र न पढ़े॥ २६॥

सकृदायसेन परिख्यानहुहे गोमये केशान् कुर्यात् ॥ २७ ॥ श्रमन्त्रकमेतत् ॥ २७॥ भा०—श्रौर लोहे के जुरे से उस दर्भिष जुली के साथ दिल्ला कपुष्मिका को एक ही वार में काटकर गोवर पर रक्खे।। २७॥

उन्दनप्रभृन्येवं पश्चादुत्तरतश्च ॥ २८ ॥

स्पष्टम् ॥ २८ ॥

भा०—उत्तर कपुष्टिगाका के काटने में भी पूर्ववत् ही नियम रहेगा॥ २८॥

त्र्यायुषमिति पुत्रस्य मूर्यानं परिगृह्म जपेत् ॥ २९ ॥ डमाभ्यां हस्ताभ्यां परितो गृहीत्वा ॥ २६ ॥

भाव — इसी प्रकार दोनों कपुष्टिएका खौर कपुष्ठल काटने पर दोनों हाथों से कुमार के माथे को पकड़ कर "त्र्यायुषं जमद्ग्ने:o" मन्त्र को पढ़े।। २६॥

उदङ ङ तस्प्रप्य कुशली कारयेद्यथागोत्रकुलकलपम् ॥३०॥ वपनं कारयेत्रापितेन । गोत्रादिवशेन शिखान्यवस्था स्मर्यते, तद्रजसारेण नापितं संप्रेष्य होमं समापयेत्॥ ३०॥

भा॰—इस प्रकार दोनों कपुष्णिका काटे जाने पर वालक वहां से हटकर श्रम्भि के उत्तर भाग में बैठे श्रौर श्रात्मीय लोग नापित से गोत्र श्रौर कुल की रीति श्रनुसार पाँच या तीन शिक्षा रखके या शिखा सहित मुण्डन करावें।। ३०॥

अरएये केशानिखनेयुः ॥ ३१ ॥

सर्वात् केशात् गोमयेत् प्रच्छाद्य कर्मकरा निखनेयुः ॥ ३१ ॥ भा०—मुख्डन के पीछे केशों को गोवर लपेट कर नौकर इसको लेकर बन में जाकर जमीन में गाड़ देवे ॥ ३१ ॥

स्तम्बे निद्धत्येके॥ ३२॥

दर्भस्तम्बे ॥ ३२ ॥

भा०—किन्हीं श्राचायों की राय है कि कुशों के गुच्छे पर केशों को रक्ले ॥ ३२॥

गौर्दक्षिणा ॥ ३३ ॥

त्रक्षणे देया। अत्रेदं चिन्त्यते-एते गर्भाधानाद्यस्संस्कारारशरीरं संस्कुर्वन्तस्सर्वेष्वदृष्टार्थेषु कर्मसु योग्यतातिशयं कुर्वन्ति । फलातिशयो योग्यतातिशये च । न पुनरयोग्यस्यैव योग्यतां कुर्वन्ति सस्कारवन्त मिमिनिर्दिश्य पुरुषमात्रस्यैव कर्मणां विधानात् स्वत एव विद्यमानस्वा-द्योग्यतायाः । नाष्यिकिञ्चित्कराः, त्र्यानर्थक्यप्रसंगात् । नापि स्वंत पुरुषार्थाः संस्कारश्रुतिविरोधात्। योग्यतातिशयम्तु संभवति यथा पानीयस्य गन्थादि चुरादेश्च तैंक्एयादि । चौलपर्यन्तास्सर्वे संस्कारा श्रतिक्रान्तस्वकाला उपनयात् प्रागेव कालातिपत्तिप्रायश्चित्तं कृत्वा कर्तव्यः । ऊर्ध्वं त्वक्रतानां लोप एव 'तद्द्रितीयं जन्म' इति जन्मान्तर-व्यपदेशात् संस्कारेषु द्विप्रकारं शास्त्रमस्ति एक वितु हपदेशकं पुत्रमुत्पां-द्येत् संस्कुर्याचेति । अपरं पुत्रस्यैते संस्कारा आत्मार्थतया कर्तव्या इति । नन्वस्वव्यापारे कथं प्रामाएयम् । सत्यं, यदि व्यापारकत्ती बोध्या स्यात्, कर्मजन्यस्य हि पुरुपार्थस्य पुरुषरोषतया जन्यताशञ्देन वोध्यते । सा च कदाचित् स्वव्यापारात् स्यात् कदाचित्परव्यापारात् स्यान् । इयान्विशेषः स्वव्यापारे तत्सिद्धये स्वयमेव प्रवर्तते । परव्यापारे तु यदि स्वाधिकारादेव प्रवर्तमानमन्यं लमते तदोदास्ते प्रसङ्गान् कार्य-सिद्धेः। अलाभे तु स्वयमेव प्रयोजयित केनाप्युपायेन। नतु असौ शिशुत्वात्प्रतिपत्तुं न शक्नोति गर्भाधानाद्यवस्थायां तु सुतरां प्रतिपत्त्य-संभवः । सत्यं, यदि यस्यैव फलं तस्यैव प्रतिपत्त्युत्पादकत्वेन शब्दस्य प्रामाएयं स्यात् । 'स्वर्गकामो यजेत' इति स्वर्गकामिन इदं कर्तव्यमिति तस्यान्यस्य चाविशेषेण प्रमितिं जनयस्येव शास्त्रमुभयोरिप प्रमाणमेव। इयान्विशेषः स्वर्गकामश्चेत् ममेदं कर्तव्यमिति प्रतिपद्यते । अन्यश्चेत् स्वर्गकामिन इदमिति प्रतिपद्यते न ममेदमिति कामसद्सत्त्वोपाधिनि-मित्तोऽसौ भेदो न शब्दस्य तत्र व्यापारः । श्रतः पिता तस्य कर्तव्यं शास्त्रेण निश्चित्यात्मनश्चावश्यं कर्तव्यतां प्रतिपद्य तत्करोति, पितुरमावे यः तद्रच्रेणेऽधिकृतः। तद्भावे यः परोपकारं कर्त् प्रवृत्तः, यो वा तं प्रत्यात्मनो गुरुत्वमिच्छति, हितैषी वा कश्चित् कुर्यात् कारयेद्वा । स्वा-

धिकारप्रवृत्तरचेदात्मीयमेव द्रव्यं ब्रह्मणे द्विणां द्यात् । तत्कार्यप्रवृत्त-रचेत्कुमारस्य यत्स्वं तदेव ॥ ३३॥

> इति खादिरगृद्धसूत्रवृत्तौ द्वितीय पटलस्य वृतीयः खरडः ॥ २ ॥ ३ ॥

भा०—इस चूड़ाकरण की दिल्ला ब्राह्मण को एक गौ देवे ॥३३॥ इति खादिरगृह्मसूत्रवृत्ति के दृसरे पटल के तीसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ २॥ ३॥

### ऋष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् ॥ १ ॥

श्रत्र गर्भाधानादि वर्षगण्नं 'गर्भादिस्संख्या वर्षाणाम्' इति स्मृतः । एवमुत्तरत्रापि । 'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत, भीष्मे राजन्यम्' इति शास्त्रान्तरे दर्शनात् ताभ्यामविरोधादुदगयनस्य समुख्यः । केचि-रत्वाहुः—'शरिद वैश्यम्' इत्यनेन विरोधात्तेन च तुल्यश्रुतित्वाद्वसन्ता-देविकल्प एवेति ॥ १॥

श्रव उपनयन संस्कार को कहते हैं। जिस मास में गर्भ हुश्रा हो उस मास से गिनने पर जो वर्ष श्रष्टम हो उस वर्ष के जिस किसी शुभ तिथि में ब्राह्मण कुमार को संस्कारपूर्वक वेद पढ़ने के लिये उपयुक्त गुरु के पास लावे।। १।।

तस्या पोडशाद्नतीतः कालः ॥ २ ॥

आङभिविधौ । श्रापत्कालोऽयं, श्रत ऊर्ध्वं ब्रात्याभवन्ति । एव-सत्तरत्रापि ॥ २ ॥

भा०---यि कारणवश न वें वर्ष में उपनयन न हो सके तो सोलह वर्ष की उमर तक जिस किसी समय जिस किसी उपयुक्त तिथि में उपनयन कर सकता है॥ २॥

## एकादशे क्षत्रियम् ॥ ३ ॥

उपनयेदिति वर्तते ॥ ३ ॥ भा०—चित्रय दुमार को उसी प्रकार गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में वेदाचार्य के पास लावे अर्थाम् उपनयन करे ॥ ३ ॥ तस्या द्वाविंशात् ॥ ४ ॥

श्रनतीतः काल इत्यनुवर्तते ॥ ४॥

भाव-श्रीर यदि श्रापत्काल में ग्यारहवें वर्ष उपनयन नंकर सके तो २२ वर्ष की उमर तक उपनयन कर सकता है।। ४।।

डादशे वैश्यम् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥ ४ ॥

भा०-वैश्य कुमार का वारहवें वर्ष में उपनयन करे ॥ ४॥ तस्या चतुर्विंशात् ॥ ६॥

स्पष्टम् ॥ ६ ॥

भा०—इसको यदि आपत्कालवशात् १२ वें वर्ष में उपनयत् न कर सके तो इसके २४ की उमर तक उपनयन कर सकता है।। ६।। कुशलीकृतमलंकृतमहतेनाच्छाच हुत्वाञ्जने व्रतपत इति।।।।।

कुरालीकृतं रूपम् । अलंकृतं चाङ्गम् । वपनालङ्कारौ । अतस्तौ चावरयमुपनयनमुहूतं कर्तवयौ । एप क्रमः—वपनं कृत्वा अलंकृत्य नान्दीमुखं कृत्वा कौतुकवन्धनं कृत्वा पुण्याहं वाचियत्वा कुमारं भोजियत्वोपलेपनाद्यभ्युक्तणान्तं कृत्वा तत्रैकदेशं प्रणीय प्रज्वालय 'इमं स्तोमम्' इत्यादि ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा नवेनाधरवाससाऽऽच्छाद्य यङ्गोपवीतमिजनं चामन्त्रकं प्रतिमुच्याचमियत्वाऽऽत्मनो दिल्ल्यात चद्गात्रेषु दर्भेपूपवेशय परिस्तरणादि प्रपदान्तं कृत्वाऽन्वारव्धे माणवके व्याहृतिभित्तिस्भिहुत्वा पुनश्च समस्तान्ताभिश्च चतस्रभिर्दुत्वा 'अन्ते व्रत्यादिभिः पञ्चभिर्माणवकं हावयेत् मन्त्रलिङ्गात्। मन्त्रलिङ्गात्। मन्त्रलिङ्गात्। प्रम्ते व्रत्यादिभः पञ्चभिर्माणवकं हावयेत् मन्त्रलिङ्गात्। मन्त्रलिङ्गात्।

भा॰—[ उक्त तीनों वर्णों के कुमार क्रम से १७ वें २३ वें और २४ वें वर्ष में उपनयन न होने के कारण पतित सावित्रिका हो जाते हैं अर्थात् इनको गायत्री मन्त्र का उपदेश नहीं हो सकता है ] इसके अनन्तर कुमार को यथागोत्र कुल शिखा रखते हुए मुख्डन करा कर

श्राभूषणों को पहना, नान्दी मुख श्राद्ध कर हाथ में कौतुक बांध कर ब्राह्मणों से पुण्याह बचवा कर, कुमार को प्रातः कालिक भोजन करवा कर लीपने से श्रभ्युचण तक भूसंस्कार कर एक देश में यहा वेदी वनवा कर उस पर श्रीम जला कर 'इमं स्तोमम्' इत्यादि ब्रह्मोपवेशन तक करके कुमारको नया वस्त्र पहना कर या ढाक कर यह्मोपवीत, मृगछाला को बिना मन्त्र के त्याग कर, श्राचमन कर श्रपने से दिचण भाग में उत्तरांध्र कुशासन पर बैठाकर, परिस्तरण से लेकर प्रपद तक की कियाओं को करके कुमार द्वारा श्रन्वारव्ध श्रलग २ तीन व्याहृतियों से तीन श्राहृति श्रीर सारी व्याहृति से चौथी श्राहृति देकर "श्रमने ब्रतपते दे" इत्यादि पांच मन्त्रों से कुमार से हवन करावे।। ७॥

उत्तरतो अने: मत्यङ् मुखमवस्थाप्याञ्जलि कारयेत् ॥८॥ श्रम्यात्मनोरन्तरेण माणवकं गमयित्वा प्रदित्तणमावृतं दर्भेषु प्रत्यङ्मुखमवस्थाप्याकोशाञ्जलि कारयेत् माणवकमाचार्यः ॥ ८॥

भा०- अग्नि और आचार्य के बीच में डाले हुये उत्तराम कुशा-श्रों पर आचार्य के सम्मुख और कृताञ्जलि हो लड़का बैठे॥ मा

स्त्रयं चोपरि कुर्यात् ॥ ९ ॥ प्राङ्मुखो दर्भेषु स्थितः ॥ ६ ॥

दक्षिणतस्तिष्ठन्मन्त्रवान् ब्राह्मण आचार्यायोदकाञ्जलि पुरयेत् ॥ १०॥

त्राचार्यस्य दिक्तिणत उद्गमेषु द्र्भेपूद्ङ् मुखरितष्ठन् ब्राह्मणः 'ब्रह्मचर्यमागामुप मानयस्व' इत्येतन्मन्त्रवित्। ऋरिवक्त्वात्सिद्धे ब्राह्मण इत्यन्यत्राप्यञ्जलिपूरणे ब्राह्मणनियमार्थं, यथा चन्द्रोप-स्थाने॥ १०॥

भा०—उस कुमार की दक्षिण में रहकर कोई वेद पाठी ब्राह्मण उसकी अञ्जलि जल से भर देवे उसके प्रधात् ब्राचार्य की अञ्जलि भी जल से भरे॥ ६॥ १०॥ मागन्त्रेति जपेत् प्रेक्षमाखे ॥ ११ ॥

श्रञ्जलिस्थमुद्कं प्रेत्तमाणे माण्यके जपेदाचार्यः । ब्रह्मचर्यमा-गामुप मा नयस्व' इति ब्राह्मणो ब्रह्मचारिणं वाचयेत् मन्त्रलिङ्गात् ॥११॥

को नामासीत्युक्तो देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं वाऽभिवादनीयं नाम ब्रूयादसावस्मीति ॥ १२॥

आचार्येगोक्तस्सन् देवताश्रयं स्वजन्मनचत्रं यहेवत्यं तहेवताश्रयं आग्नेय इतिवत् , नचत्राश्रयं स्वजन्मनचत्राश्रयं अश्वयुगिवरणुशर्माना-मास्मीतिवत् प्रतित्र्यात् माणवकः । त्रभिवादनीयं गुह्मम् । त्रश्वयुक् अपभर्शाः कृत्तिकाः रोहिशी सगशीर्षं आर्द्रो पुनर्वस् पुष्यः आरलेषा मवाः फल्गुनी उत्तरफल्गुनी इस्तः चित्रा स्वाती विशाखे अनुराधाः उयेष्टा मूलं श्रवादाः उत्तरावादाः श्रवणं श्रविष्टा शतभिषक् प्रोष्टपदा उत्तरप्रोष्ट्रपदा रेवती एतानि नत्त्त्राणि । अश्वनौ यमः अग्निः ब्रजापितः सोमः रुद्रः अदितिः बृहस्पितः सर्पाः पितरः अर्थमा भगः सविता इन्द्रः वायुः इन्द्राग्नी मित्रः इन्द्रः प्रजापितः पितरो वा आपः विरवेदेवाः विष्णुः वसवः इन्द्रः अजरकपात् अहिर्वधन्यः पूषा एतानि देवतानि । आश्वयुकः आपमरणः कार्तिकेयः रौहि ऐयः मार्गशीर्षः आर्द्रकः पौनर्वसुः पौषः आश्रेषः माघः फाल्गुनः औत्तरफाल्गुनः हस्तः चैत्रः स्वातिः वैशाखः , अनूरायः ज्येष्टः मौलः आषाढः श्रौत्तराषाढः आवर्णः अविष्टः शातिभवजः प्रौष्ठपदः स्रौत्तरप्रौष्ठपदः रैवत इति नज्ञाश्रयनिर्देशः । आश्विनः याम्यः आग्नेयः प्राजापत्यः सौम्यः रौद्रः त्रादित्यः बार्हस्पत्यः सार्पः पित्र्यः त्रार्यमणः भागः सावित्रः ऐन्द्रः वायव्यः ऐन्द्राग्नः मैत्रः ऐन्द्रः पित्र्यः श्राप्यः वैश्वदेवः वेष्ण्वः वासवः ऐन्द्रः अजएकपादः अहिर्बुध्न्यः पौष्णाः इति देवताश्रयनिदेशः ॥१२॥

उत्सन्यापो देवस्य त इति दक्षिणोत्तराभ्यां इस्ताभ्या-मञ्जलि गृह्णीयादाचार्यः ॥ १३ ॥

माणवकाञ्जलावुत्सुज्यासौशब्दे विष्णुशर्मित्रितिवत् ब्र्यात् ।।१३॥ भा०-आवार्य उस कुमार के प्रति देखकर दो मन्त्रों का स्वयं पाठ करे "त्रह्मचर्यमागाम्" लड़के से पाठ करावे और "कोनामासि"
मत को पढ़ते हुये उस कुमार का नाम पूळे। तब आचार्य स्वयं अधिवादन समय में कहने योग्य नाम, दूसरा जन्म सूचक एक नया नाम
किएत कर उस कुमार से "मैं अमुक नाम वाला, गुरो! आपको
अभिवादन करता हूं"—कहवा कर तब लिये हुये जलाखिल को छोड़
कर "देवस्य ते०" मंत्र को पढ़ते हुये दिहने हाथ से कुमार के अंगूठे
को साथ दिहना हाथ पकड़े। वह नाम देवताश्रित, या नज्जाश्रित,
या गोत्राश्रित होगा। देवताश्रित जैसे वेद गर्म, ब्रह्म ब्रत प्रभृति।
नज्जाश्रित जैसे आरिवन रौहिए प्रभृति। गोत्राश्रित जैसे वैद, पैल्व
प्रभृति।। ११। १२। १३।।

सूर्यस्येति भद्क्षिणमावर्तयेत् ॥ १४ ॥

श्रञ्जलिं गृहुन्नेव यावत्प्राङ् मुखः स्यात्तावदावर्तं येत् । श्रसाविति पूर्ववत् ॥ १४॥

भा०—इसके पश्चान् कुमार को प्रदक्षिण क्रम से पूर्व मुंह कर "सूर्यस्य०" मन्त्र का पाठ करे।। १४॥

दक्षिणमंसमन्त्रवमृश्यानन्तर्हितां नाभिमालभेत्राणाना-मिति ॥ १५ ॥

अनन्तर्हितामेव पािखभ्यां परितो गृह्णायात्।। १४॥

भा०-पीछे आचार्य "प्राणानां प्रन्थिरिसः" मंत्र को पढ़ते हुए दिहने हाथ से उस कुमार को दिहने कन्धे पर होकर वस्त्र आदि से ढका हुआ न हो ऐसी नाभि को स्पर्श करे॥ १४॥

अथैनं परिदद्यादन्तकप्रभृतिभि: ॥ १६ ॥

अनन्तर्हितमेव पाणिभ्यां परितो गृह्णीयात् । 'अन्तक इदं ते परिददाम्युदरम्' इत्युदरम् , 'अहुर इदं ते परिददाम्युरः' इत्युरः, \_ 'क्रशन इदं ते परिददामि कण्ठम्' इति कण्ठम् ॥ १६॥

दक्षिणमंसं प्रजापतये त्वेति ॥ १७॥

दिसंग्रेन पागिना गृहीयादिति शेषः। इतः प्रभृत्यसौशब्दे विष्णुशर्मितिवन्माणवकनाम वृयादाचार्यः॥ १७॥ भा०—वालक के नाभि देश में हाथ चलाकर आचार्य 'श्रहुरः०' मंत्र पढ़े। इसी प्रकार हृद्य देश में हाथ चलाकर "कृशनः" मंत्र पढ़े फिर आचार्य दहिने हाथ से बालक के दहिने कन्धे को त्पर्श कर "प्रजापते त्वा०" मंत्र पढ़े॥ १६। १७॥

सब्येन सब्यं देवाय त्वेति ॥ १८ ॥

सब्येन पाणिना सब्यं गृह्णीयादित्यर्थः ॥ १८ ॥

भा?—इसी प्रकार वार्ये हाथ से वालक के वार्ये कन्धे की स्पर्श कर "सवित्रे त्वा?" मंज़ ो पढ़े॥ १८॥

ब्रह्म वार्यसीति ॥ १९ ॥

विष्णुरामेश्रितिवन्माण्वकमुत्रत्या ॥ १६॥

भा॰—उसके पश्चात् त्राचार्य वालक को तुम त्राज से इस नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मचारी होते हो, प्रतिदिन सायं प्रातः श्राग्न में समिद् का श्राधान करना, शौचाचार से रइना, दिन में न सोना ॥ १६ ॥

संप्रेष्योपित्रस्य दक्षिणजान्त्रक्तमञ्जलिकृतं प्रदक्षिणं ग्रुञ्ज-मेखलामात्रभ्रन्त्राचयेदियं दुरुक्तादिति ॥ २० ॥

'सिमवमाधेहि' इत्यादिभिश्चतुर्भिप्रेष्योद्गप्रेषु दर्भेपूपविष्टं नमस्काराञ्जलिकृतं थिवृत्कृतां मुञ्जमेखलां प्रदिक्ताणं त्रिः परिवारयन्ना-चार्यो माणवकं मन्त्रे वाचयेत्॥ २०॥ ।

भा०—िफर त्राचार्य उस वालक को मूंज की बनी मेखला तीन फेरा करके पहनावे और पहनाते समय "इयं दुक्क्तम्०" और ऋतस्य गोपुत्री" दो मंत्रों को पदावे ॥ २०॥

अधीहि भो इत्युपसीदेत् ॥ २१ ॥

श्रानेः पश्चात् स्वस्थान श्राचार्य उपविष्टे पूर्ववत् प्रत्यागम्य दिल्लागेन पाणिना सन्त्यं पाणिमनङ्गुष्ठमुपसंगृह्य 'श्रधीहि भो' इति दिल्लात उदगप्रेषु प्राङ्मुख उपविशेत्, श्राचार्याभिमुखे चलुर्मनसी कृत्वा प्रागप्रेषु वोदङ् मुखः । श्रयं विशेषः स्मृत्यन्तराद्गम्यते । श्राचार्यश्च तथा कारयेत् । तदेतदाचार्यस्य समीपनयनं उपनयनं उपनयनशब्दः स्य प्रवृत्तिनिमित्तम् । श्रयोपरिष्टाद्धोमादि समापयेत् । नत्वेवं सित

सावित्र्यध्यापनादेहीं मत्रयोगान्तर्भावो न स्यात् । नायं दोषः 'उपनयीत तमध्यापयेत्'इति उपनयनोत्तरकाल शावित्वश्रवणादध्यापनस्य। ननु वेदा-ध्यापनं तत्रोक्तं, इह तु सावित्र्यध्यापनम् । नायंदोयः, सर्ववेदाध्यापनो-पक्रमरूपस्वात्साविज्यध्यापनस्य । तथा हि—'सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यस्माः वित्रयन् च्यत इति हि बृाह्मणम्'। ऋपि च सर्ववेदात्मकत्वं सर्वसारत्वं च साविज्यादीनां श्रुतिस्मृतिषु श्रूयत एव । तथाहि — निश्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदृदुइत्' इत्यादिभिः। अत उपरिष्टाद्धोमादि समा-प्यैव साविज्यध्यापनम्।।२१।। श्रत ऋर्षं माविज्यादेरध्यापनप्रकारमाष्ट्-

भा०--- अनन्तर कुमार गुरु के पास हाथ जोड़ कर नम्नता से प्रार्थना करे कि 'हे गुरो ! मुक्ते वेद पढ़ावें' अगैर सावित्री का उपदेश करें।। २१॥

तस्मा अन्याह सावित्रीं पच्छोऽर्घर्चशस्सर्वामिति ॥ २२ ॥ पादेपादेऽवसायाध्यापयीत, ततः पाद्वयेऽवसाय, ततस्मर्बा संहत्य ॥ २२ ॥

महाच्याहतीश्रैकैंकशः ॥ २३ ॥ भूभुवस्वरिति प्रत्येकमवसाय ॥ २३ ॥ श्रोंकारं च ॥ २४ ॥

श्रोमिति चाध्यापयीत ॥ २४ ॥

भा०-कुमार के प्रार्थना करने पर आचार्य उस कुमार को पहिले एक २ चरण करके फिर आधी २ ऋचा और पुनः पूरी ऋचा वार २ त्रावृत्ति करावे उसके पश्चात् "भूः, भुवः, त्रौर स्वः" इन तीन महाब्याहृतियों को अलग २ श्रीर "श्रीप" कार भी अभ्याम कग्रवे॥ २२ । २३ । २४ ॥

प्रयच्छत्यस्मै वार्श दण्डम् ॥ २५ ॥ स्मृत्युक्त' द्र्षं प्रयच्छेदाचार्यः ॥ २४ ॥ सुश्रवस्सुश्रवसं मेति ॥ २६ ॥ प्रतिगृह्णीयादिति शेषः ॥ २६ ॥

भा०-पश्चान च्याचार्य्य इस कुमार के हाथ में पलाश वृत्त का दर्षु देकर "मुश्रवमः मुश्रवसं मा कुरु०"मंत्र को पढ़ावे ॥ २५ । २६ ॥ मिथमादथ्यादयये समिथमिति ॥ २७ ॥

यक्षियां समिधं तस्मिन्तेवाम्नावादध्यान्माण्यकः । श्रोपासनव-दुभयनः पश्पिचनम् ॥ २७॥

भार - "अग्नये समिधप्०" मन्त्र को पढ़ कर अग्नि में सभित् डाले ॥ २७ ॥

भैक्षं चरेत्।। २८॥

भवति भिन्नां देहीति त्राह्मणः । भिन्नां भवति देहीति न्नत्रियः । भिन्नां देहि भवतीति वैश्यः । दण्डह्स्त स्त्रादित्यमुपम्थायागित प्रदृत्ति-ग्रीकृत्य भेन्नं याचेत ॥ २८ ॥

मातरमग्रे ।। २९ ।। प्रथमं मातरं याचेत ॥ २६ स्रथान्यास्सुहृदः ॥ ३० ॥

सुहृद् इति स्त्रीपुंसयोस्साधारएयान स्त्रीनियमार्थमन्या इति विशिनष्टि॥ ३०॥

आचार्याय भैक्षं नित्रेद्येत् ॥ ३१ ॥

भैत्तिमद्रमुपयु ज्यतामिति ब्र्यात् । स्राचार्योऽपि गृह्णीयात् प्रति प्रयच्छेद्वा यथारुचि । उपनयनं वेदाध्ययनाङ्गं पुरुपसंस्कारद्वारेण तद्धमंमेव कियमाणमपेत्तते 'स्रध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिप्रह्श्च द्विजातीनाम्' इत्यधिकृत्य विधानादुपनयनाच्च द्विजातित्व-सिद्धेः । स्रत उपनयनरिहतानां तेष्वनिधिकारः । न केवलं वैधत्वं किं तु निपेधात्प्रत्यवायश्च ॥ ३१ ॥

भा०—इस प्रकार उपनयन होने पर वालक भिद्याचरण करे पिंदे माता से भिद्या मांगे, उसके पश्चात् माता के दो सुहृद् के पास या उस स्थान में जितनी स्त्रियां उपस्थित हों माता से आरम्भ कर सब ही के पास भिद्या माँगे और भिद्या जो मिले उसकी आचार्य्य के पास निवेदन करे॥ २८। २०। ३१॥ तिष्ठेदाऽस्तमयात्तूष्णीं ॥ ३२ ॥ त्रिरात्रं क्षारत्ववणदुम्ध-मिति वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

र्रपष्टे सूत्रे ॥ ३२-३३॥ इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तो द्वितीयस्य पटलस्य चतुर्थः खण्डः ॥ २ । ४ ॥

भाव उपनयन सम्बन्धी यश्चिय कार्य करने पर जो दिन का शेष रह जावे, उतना समय कुमार चुपचाप स्थिरता से विश्राम करता हुन्ना वितावे।

श्रौर उपनयन दिन से तीन दिन तक ज्ञार लवण न खांवे श्रौर दुग्ध भी न पीवे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्ति के दूसरे पटल के चौथे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुत्रां ।। २ । ४ ॥

गोदाने चौलवत्कल्पः ॥ १ ॥

श्रष्टौ त्रतानि समर्थन्ते छन्दोगानां—उपनयनं, गोदानं, त्रातिकम् श्रादित्यत्रतं, माहानिम्नक, मापनिपदं, भोतिकं, ब्रह्मसामत्रत, मिति। तेषासुपाकरणिवसगीं च समर्थेते। तत्रोपनयनं छत्स्नाध्ययनार्थमपि सत् वृतान्तरिनरपेत्तं सावित्र्यध्ययने तत्सामाध्ययने च उपकरोतीति व्रतान्तरत्वेन व्यपदिश्यते। निरपेत्तकारस्य च विसर्गः क्रियते उपनीतं वत्त्यमाणान्यधश्शय्यादीनि समृत्युक्तानि च नियमानि समाचरन्तं सावित्रीं तत्साम चाध्याप्य यथाश्रद्धे काले गते हविष्यमेकमुक्तः भोजित्वा प्रागुद्यात्प्राङ्वोदङ् वा प्रामान्निष्कम्य कमण्डलुनोदकं गृहीत्वा प्रागुद्वम्प्रवणे देशे गोमयेनोपलिप्य कुशेः प्रदक्तिणं मण्डलं छत्वोदिते तेनोदकेनाचम्य दर्भमुष्टिं गृहीत्वा प्रह्वीभूतो वामदेव्येन मण्डलं प्रविशेत्वार्थः। शिष्यश्च तमन्वारभ्य तथा प्रविशेत् पुनराचम्य प्रपदान्तं छत्वारन्वारक्षे व्याहृतिभिः हुत्वा 'इन्द्राय बृहद्भानवे स्वाहा, प्रजापतये सनवे स्वाहा' इत्याधारावाधार्याज्यमागौ हुत्वा 'श्रम्ये स्वाहा सोमाय

स्वाहा रुद्राय स्वाहेन्द्राय स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यस्वाहा ऋषिभ्यस्वाहा ऋग्भ्यस्वाहा यजुभ्यस्वाहा सामभ्यस्वाहा अद्धाय स्वाहा प्रज्ञाय स्वाहा मेधाय स्वाहा साविश्य स्वाहा सदसरपतये स्वाहाऽनुमतये स्वाहा' इति च हुत्वा होमं समाप्य कुशेष्वासीनो दिव्योन पोणिना कुशमुष्टि धारयन यथाविधं वच्यमाणं तथाविधं आवयेत श्रोपूर्वा व्याहृतीः सावित्रीं चतुरनुद्धत्य मनमा साम सावित्रीं च 'सोमं राजानं ब्रह्मज्ञह्मानम्' इति द्वे पव्यविधं वामदेव्यं वैक्षपं वाचोत्रते द्वे भद्रश्रेयसी च पूर्वं गीत्वा माण्वकं गायत्रं श्रावयेत् । अथोपरिष्टात्सप्त महासामकल्माधवामदेव्यानि गीत्वा पुनरेकदेशं प्रणीयानुप्रवचनीयहोमः—प्रपदान्तं कुत्वाऽन्वारक्षे व्याहृतिभिद्धृत्वा पुनश्च समस्तान्ताभिश्चतस्त्रभिद्धृत्वा'श्चग्ने त्रतपते' इत्यादिभिः पव्यक्तिभक्तं स्वापत्यान्य समस्तान्ताभिश्चतस्त्रभिद्धृत्वा'श्चग्ने त्रतपते' इत्यादिभिः पव्यक्तिभक्तं क्रिष्यारिणं हावयेत् । 'उपनयनत्रतमचारिषं तत्ते प्रावोचं तदशकं तेनारात्सिमद्महमनृतात्सत्यमुपागाम् इति मन्त्रविकारः । ऋवं साम सद्सरपतिमिति चाडयं जुहुयात् । उपरिष्टाद्धोमादि वृत्विणान्तं कृत्वा ततो वामदेव्येन क्रमशो निष्कमणं, ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥

श्रथ गोदानोपाकरणं-तत्र चौलवत् केशक्लृप्तिः वपनामस्यथः। वपनाङ्गस्वान्नापितादिरप्यतिदिश्यते, क्रुसरस्थालीपाकः माता त्र्यायुषु-मिति च त्रयं निवर्तते श्रतदर्थस्वात्। होमस्त्विस्त-'एव चौन्नोपनयन-गोदानेषु' इति वचनात्। समस्ताभिन्याहृतिभिः होमः कर्तब्यः॥ १॥

भा०—जो दान संस्कार में चूड़ाकरण की भाँति केशों के कादने में क्रियायें होगी। उपनयन काल से सोलहवें वर्ष में अर्थाहा जिसका गर्भ काल से गिनती कर आठवें वर्ष में उपनयन हुआ है उसके गर्भ से २४ वें वर्ष में और जिसका नवम आदि सोलहवें वर्ष में उपनयन हुआ हो उसका २४ वर्ष से २२ वर्ष की उमर में गोदान संस्कार करे। चाहे ब्राह्मण, च्त्रिय या वैश्य वर्ण का जिस उमर में उपनयन हुआ हो उसको उस समय से १६ वर्ष और वीतने पर समावर्त्तन संस्कार होना चाहिये। जिस ब्रह्मचारी का गोदान संस्कार करना हो उसको केवल एक समय हविष्यान भोजन कराकर सूर्योदय से पहिले प्राम से पूर्व

या उत्तर दिशा में ले जाकर कमण्डलु में जल लेकर पूर्व उत्तर उलुआ जगह में गोवर से लीप कर कुशों से प्रदिच्या कम से मण्डल करके उसी जल से आचमन कर कुश की मुट्टी लेकर निहुर कर वामदृव्य गान कर आचार्य्य मण्डल में प्रवेश करे। और शिष्य आचार्यं से अन्वारव्य हो उसी प्रकार आचमन कर मण्डल में प्रवेश करे । और प्रपद तक की सारी कियाओं को अन्वारव्य हुये करके व्याहृतियों से होम करके "इन्द्राय बृहदुभानवे स्वाहा" से लेकर "अनुमत्रये स्वाहा" तक मन्त्रों को पढ कर होम करकें क़शों पर बैठा हुआ दहिने हाथ से कुरा की मुट्टी को धारण किये हुये यथाविधि वत्त्यमाण मन्त्र को ज्यों का त्यों सुनावे । "त्रों पूर्वक ज्याहृति सावित्री को चार वार शीघ मन ही मन साम सावित्री को सुनावे। "सोमं राजानं ब्रह्म जङ्गानम्" इन मन्त्रों को सुनावे, त्रौर पब्च निधन वाम देव्य वैरूप वा-चो बते हो और भद्रश्रेयसी को पहिले जाकर ब्रह्मचारी को गायत्र को सुनावे । श्रीर ऊपर से सात महासाम, कल्माप,वामदेवयको गाकर फिर एक देश को वेदी वना कर अनुप्रबचनीय होम- प्रपद तक की सब कियाओं को अन्वारव्य हुये व्याहृतियों से आहृति करके फिर सारी व्याहृति से चौथी आहुति करके "अग्नेवृतपते" इत्यादि पाँच मन्त्रीं से ब्रह्मचारी से हवन करावे। ऋार 'उपनयनत्रतमाचरिषं तत्ते प्रावीचं तदशकं तनारात् समिद्महमनृतात् सत्यमुपागाम्। यह मन्त्र का विकार है। फिर "ऋचं साम सद्सस्पतिमिति" मन्त्रों से ऋाज्य की आहुति देवे । ऊपर से होमादि दक्षिणा तक कर्म करके तत्र वामदेव्य गान गातं हुये निकले तब ब्राह्मण् भोजन करावे ।। १ ॥

सलोमं वाषयेत् ॥ २ ॥

स्पष्टम् ॥ २ ॥

भा - ब्रह्मचारी जब केशों को कटवावे उस समय कत्त, छाती. उपस्थ, ख्रीर शिखा तक के रोमों को कटवावे ॥ २॥

गोत्रश्वाविमिथुनानि दक्षिणाः पृथग्वर्णानाम् ॥ ३ ॥

गोमिथुनमश्वमिथुनमविमिथुनं च यथाक्रमं ब्राह्मणादीनां गो-स्थाने स्थात् ॥ ३॥

सर्वेषां वा गौः ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ ४ ॥

भा०-इस गोदान संस्कार की द्तिएा, ब्राह्मण यदि ब्रह्मचारी हो तो अपने आचार्य को दो गाँ देवे, त्तित्रय हो तो छः घोड़े अगैर वैश्य हो तो दो भेड़ा देवे। या ब्राह्मण, त्तित्रय और वैश्य तीनों ही द्तिएा में गाँ ही देवें॥ ३।४॥

अजः केशमतिग्रहाय ॥ ५ ॥

यः केशान् निखनेत् तस्मै देयः ॥ ४॥

भा०-केश, लोम आदि कें कटवाने पर जो केशादि को फेंकता है उसको एक छाग देवे ॥ ४॥

उक्तमुपनयनम् ॥ ६॥

चौलवद्वपनान्तं कृत्वा पुनरेकदेशं प्रणीय उपनयनवन्कृत्सनं कुर्यात् । 'गोदानत्रतं चरिष्यामि' इति मन्त्रविकारः । समीपनयनस्या-ध्यापनार्थत्वात् सावित्रयध्ययनमपि तद्वदेव कुर्यात् । यदुपनयनं गोदा-नाद्यपि तदेवोक्तमिति सूत्रयोजना ॥ ६॥

भा०-उपनयन संस्कार कहा गया ॥ ६॥

नाचरिष्यन्तं संवत्सरम् ॥ ७ ॥

यस्य संवत्सरं चरिष्यामीति बुद्धिस्तमेवेदं प्राह्येत्। यस्य तु न चरिष्यामीति बुद्धिस्तं न प्राह्येदित्यर्थः। तमि केनाप्युपायेन तथा-बुद्धिमुत्पाद्य प्राह्येदेव ॥ ७॥

भा०-इस उपनयन के पीछे एक वर्ष काल भी जो ब्रह्मचारी ब्रत का अनुष्ठान न करना निश्चित हो, उसको इतने कम दिन के लिये पुनः उपनीत होने की आवश्यकता नहीं ॥ ७॥

अनियुक्तं त्वहतम् ॥ ८॥

श्रनियुक्तमनियतं, तुशब्दोऽवधारणार्थः। अहतमवानियतं सूत्र-

चर्ममेखज्ञाद्रण्डा नियता एव । असत्यवधारणे कृतकार्यतया तेषामिष निवृत्तिराशङ्कर्ये त, अतः पुराणानि त्यक्त्वा नवानि गृहीयान् ॥ ८॥ तथाऽलङ्कार: ॥ ९॥

श्रनियत इत्यर्थः ॥ ६ ॥ श्रथ वृतिनो नियमा उच्यन्ते— भा०—इस उपनयन में श्रखण्ड वस्त्र श्रौर श्रलङ्कार की श्राव-श्यकता नहीं ॥ द । ६ ॥

अधरसंवेशी ॥ १०॥

खट्वादिनिषेधकः ॥ १०॥

भा०-खाट या दूसरी ऊंची शय्या पर न सोये किन्तु जमीन पर ही कम्बलादि विद्यावन पर सोये ॥ १०॥

अमधुमांसाशी स्यात् ॥ ११ ॥

₹पष्टम् ॥ ११ ॥

भाव-मांस मिट्राका सेवन न कर केवल हिवच्यात्र ही भोजन करे॥ ११॥

मैथुनक्षुरक्रत्यस्नानावलेखनदन्त्रधावनपाद्धावनानि वर्ज-येत् ॥ १२ ॥

ज्ञुरकृत्यनिषेघो नोपरिच्छेदनस्य । हप्टार्थस्य स्नानस्य निपेघो न विहितस्य । अवलेखनं स्पृश्यमलापकर्षणम् । पादधावनं नखकु-न्तनादि ॥ १२ ॥

भा॰—मैथुन न करे, जुरे से केशों को न कटवावे, विहित स्नान करे, (जल क्रोड़ापूर्षक न स्नान करे) अलका तिलक द्वारा दाँत न रंगे और आवश्यकता के अतिरिक्त बहुत देर तक पैर न धोना ।१२।

नास्य कामं रेतस्स्क् न्देत् ॥ १३ ॥

कामे निमित्ते रेतस्स्कन्दनं न कुर्यात् । श्रनेनैव सिद्धे मैथुनिन-पेथो दोपभूयस्त्वसूचनार्थः ॥

भा०-भोग की इच्छा से वीर्घ्यपात न करे॥ १३॥ न गोयुक्तमारोहेत ॥ १४॥

गवायुक्त' रथादि॥ १४॥
भा०-त्रैत जुड़े रथ पर सवारी न करे॥ १४॥
न ग्राम उपानही ॥ १५॥

उपानहौ प्रामे वर्जयेत्, न वहिनिषेधः । एपु सूत्रेष्वधिकवचनानि सजातीयस्मृत्युक्तोपसंग्रहणार्थानि ॥ १४॥

भाष्-गाँव के भीतर जूता पहन कर न चले वाहर पहन कर जा सकता है ॥ १४॥

मेखबाधारणभैक्ष वर्यदण्डसिमदाधानोपस्पर्शनपातरिभवादा नित्यम् ॥ १६ ॥

धारणप्रहणं वस्नस्त्रचर्मणामुपसंप्रहणार्थम् । मैन्नचर्यमुक्तेन प्रकारेण । चर्यप्रहणं सायंप्रातभैन्तमोजनार्थम् । दृण्डेश्यस्यानन्तरं धार-णशब्दोऽध्याहर्तव्यः । विनष्टानप्सु प्रास्यान्यानिमन्त्रेण गृह्णीयात् ।

> मेखलामजिनं द्राडमुपवीतं कमराडलुम्। श्रद्मु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत्।।

इति मनुवचना । सिमदाधानं 'देव सिवतः प्रसुव' इति लौकि-केऽमी परिचरणतन्त्रेण सायं प्रातश्च । आधानप्रहणं व्याहृतिभिश्च समस्तान्ताभिस्सिमदाधानार्थम् । याज्ञिया एव सिमधः । उपस्पर्शनं स्नानम् । प्रातरिभवादो गुरूणां कर्णसमौ बाह् उद्धृत्य व्यत्ययस्तेन पाणिना दिल्लोन दिल्लां पादं गृह्णीयात् सव्येन च सव्यम् । श्रिभवा-द्ये विष्णुशर्मनामाह्मस्मि भो इतिवद्यथानाम । नित्यमिति समाप्ते-प्विप त्रतेष्वास्नानादनुवृत्त्यर्थम् । एते सर्वत्रतसाधारणाः 'श्रनियुक्तम्' इत्यारभ्योक्ताः ॥

भा॰-मेखलाधारण, भीख मांग कर पेट भरना, द्रण्डधारण समिदाधान, जल से हाथ पैर धोकर ईरवरोपासना श्रीर प्रातः उठकर गुहजनों को श्रभिवादन ये पांच कर्म प्रतिदिन कर्त्तन्य हैं॥ १६॥

गोदानत्रातिकादित्यत्रतौपनिषद्ज्येष्ठसामिकास्संवंत्सराः॥ संवत्सरं च कर्तव्या इत्यर्थः॥ १७॥ भा०-और सर्वत्सर में गोदानिक वृत, आहित्य वृत, उपनिषद् वृत और ज्येष्ठ सामिक वृत किय जात हैं।। १७॥

# नादित्यव्रतमेकेषाम् ॥ १८ ॥

एकेवां शाखिनामादिस्यत्रतं नास्ति येवां शुक्रियपाठी न विद्यत इस्यर्थः । त्रपरा व्याख्या—एकेयामाचार्याणां मनेन सर्वेवामेव शाबिन-नामादिस्यवतं नास्तीति ॥ १८॥

भा०—किन्हों आचाय्यों का मत है कि सब ही शाका वालों के लिये आहित्य ब्रत नहीं है।। १८।।

ये चरन्त्येकवाससो भवन्ति ॥ १९ ॥ न वाससां परिवर्तनं कुर्यः ॥ १६ ॥

श्रादित्यं च नान्तर्द्यते ॥ २० ॥

ब्रायागमनिषेघोऽयम् ॥ २०॥ न चापोऽभ्युपयन्ति ॥ २१ ॥

रनानार्थमपि नावगाहनं कुर्यः ॥ २१ ॥

भा०—जो लोग 'श्रादित्य त्रत' के साथ 'उपिनपद् त्रत' श्रवलम्बन करते हैं। उनको निम्नलिखित तीन त्रत श्रवलम्बन करना चाहिये। पहिले जब तक इस त्रत का श्रनुष्ठान करे, उत्तरीय वस्न का व्यवहार न करे, एक ही वस्न से निर्वाह करे। दूसरे तब तक घर श्रीर वृद्ध के श्रातिरिक्त सूर्य को न श्रिपावे। श्रथात् श्रात चादि का व्यवहार न करे। तीसरा तब तक गुरु की विशेष श्राह्मा विना जानु परिमास जल से सम श्रिषक जल में न जावे।। १६। २०। २१॥

### शकरीणां द्वादश नव पट्त्रय इति विकल्पाः ॥ २२ ॥

संवत्सरा इति वर्तते । विकल्पा इति विविधा एते कल्पाः न तुल्या इत्यर्थः । श्रानेन कालभूयस्तया फलभूयस्त्वं चोत्यते ॥ अथ महा-नाम्नीश्रतिनो नियममाह—॥ २२ ॥

भा०—महा नाम्नी नाम से प्रसिद्ध सामानुशीलन साध्य त्रत इ.रे । वह १२, ६, ६, ३ वर्षों में पूरा होगा ये बारह आदि वर्ष पूर्वीक १६ वर्ष से अतिरिक्त हैं। जो लोग इस काम्य व्रतके अनुष्ठान करने की इच्छा करें १६ वर्ष में गोदान आदि चारों व्रत अनुष्ठान करके अवश्य कर्त्तव्य व्रह्मचर्य समाप्त कर और यथासामध्य १२, ६, ६ या ३ वर्ष और भी ब्रह्मचर्य करें।। २२।।

कृष्णवस्त्रः ॥ २३ ॥

कृष्णम्तु वर्णविशेषः, आर्द्रवस्त्रता वा ॥ २३ ॥

कृष्णभक्षः ॥ २४ ॥

नीरसाहारः अपकाहारो वा ॥ २४ ॥

भा॰—काला रंगा हुआ या मिलन वस्त्र व्यवहार करे ां भला बुरा विचार को छोड़कर जब जो भोजन मिले उमीको खावे ।।२३।२४।।

श्राचार्याधीनः ॥ २५ ॥

श्रसत्यप्यध्ययने तिस्त्रयकारी स्यात् ॥ २४ ॥
भाव-सर्वथा श्राचार्य के श्राज्ञाकारी होवे ॥ २४ ॥
तिष्ठेदिवा ॥ श्रासीत नक्तम् ॥ २६-२७ ॥
स्पन्टे ॥

भा०-दिन में खड़ा रह कर दिन काटे ऋौर रात्रि में सोवे या वैठे परन्तु खड़ा न होवे॥ २६। २७॥

संवत्सरमेकेषां पूर्वः श्रुताश्चेत् ॥ २८ ॥

यस्य पित्रादिभिम्बन्यवरैश्शकर्याऽधीताः स संवत्सरं चरेदित्येके मन्यन्ते ॥ २८ ॥

भा०-किन्हीं त्राचार्यों का मत है कि जिस ब्रह्मचारी ने पिता त्रादि से हीन या कम शकरी पढ़ी हो बहु साल भर तक उक्त ब्रत करे॥ २८॥

## उपोषिताय परिणाद्धाक्षायानुगापयेत् ॥ २९ ॥

'ठ रत्ययो वहुलम्' इति द्वितीयास्थाने ताद्रश्र्यवाचिचतुर्थी कृता तद्र्थानां धर्माणां बाहुल्यं सूच्यितुम्। ते च धर्मानिदानकारेणोक्ताः स्राचारसिद्धाश्च वेदित्रव्याः। तान् वस्यामः। सहानाम्न्यध्ययनकाले अवार्यशिष्ययोर्हस्तेनोद्कथारण्म्, एको वा द्वा वा गायतां न वहवः, सकृद्वमुक्त्वा साम च सकृद्व पुरीपपद्मुक्त्वा पुनः पाद्शः सकृद्वृ्यात्, नावर्तयेदेकस्मिन् दिने । त्रतचरण्काले सायंत्रातस्तानं, वर्णते चरणं नातीयात् । नात्रोपेन्ना कर्तव्या कृत्स्नवेदतुल्यत्वात् अस्य साम्नः । त्रतचरण्काले पूर्णेऽहोरात्रं वाग्यत उपवसेत् । प्रागस्तमयाद्हतेन वाससा चन्नुषी पिधाय रात्रावासीत । अथ परेचुक्पोपितं परिण्द्वानं वाग्यत- मुपनयनवच्छे यःपर्यन्तं गीत्वा शकरीर्गापयेत् आवयेद्वा आवण्विधि-वचनात् । अनु सादृश्यार्थः । अध्ययनकालवदुद्कधारण्मृग्जपश्चेत्यर्थः प्रतिस्तोत्रीयं पुरीपपदाभ्यासो विशेषः ॥ २६ ॥

भा०-अभोजन और ब्रह्मचारी की आंखों को बन्द करके उसे आचार्य शकरी छन्द के तीन स्तोत्रीय गान करावे, इस गान को महा नाम्नी साम कहते हैं॥ २६॥

यथा मा न प्रयक्ष्यतीति तं पातरिभवीक्षयिनत यान्यप्रध-क्षन्तं मन्यन्तेऽपोऽप्रिं वत्समादित्यम् ॥ ३० ॥

शकरीगानानन्तरं यथा वीच्चणे कृते मां दृग्धुं न शह्यांत माग्-वक इत्याचार्यो मन्यते तथा तं वीच्चयेत् प्रातःकाले । अमोत्यनन्यवीच्-गार्थम् । वहुबचनं गुरुत्वात्पूजार्थम् । यानि दृग्धुमशक्तः मन्यन्ते तानि वीच्चयेत् । कानि पुनस्तानि ? अवादीनि ॥ ३० ॥

तेपां वीच्रणमन्त्रान् क्रमश आह-

शकरी गान के पीछे प्रात-काल आचार्य यह सममे कि कुमार को ऐसे देखने में कुमार मुक्ते न जला सकेगा, उस भांति उसे देखे। जिन पदार्थी को जलाने में असमर्थ समके उनकी देखे, वे हैं जल, अग्नि, वत्स और आदित्य ॥ ३०॥

अयोऽभिन्यरूयमित्यपो ज्योतिरभिन्यरूयमित्यप्रिं पश्चन-भिन्यरूयमिति वत्सं सुरभिन्यरूपमित्यादित्यं विस्रजंडाचम्॥३१

वाग्यमननियमं त्यजेत् नावश्यं भाषेत ॥ ६१ ॥

भा०- उनको देखने के मन्त्र हैं जैसे- "अपोऽभिव्यख्यम्" मंत्र पढ़ कर जल को, "ज्योतिरभिव्यख्यम्" मन्त्र पढ़ कर अग्नि को, "पशू- निभव्यस्यम्" मन्त्रसे वत्सको और "सुरिभव्यस्यम्" मन्त्रसे आदिस्य को देखे, इतके बाद कुसार ब्रह्मचारी वाक्य संयमका त्याग करे ॥३१॥

गोर्द्शिया॥ ३२॥

वीक्ता गौराचार्याय देया माणवकेन ॥ ३२ ॥

भा०-जिस गी को च्याचार्य ने देखा है उसको कुमार आचार्य को दिल्ला में देवे ॥ ३२ ॥

कंसो वासो म्ब्यथ ॥ ३३ ॥

कंतपूर्णी आपः तत्र रुक्मं निधाय वीचेन, तं वंसं रुक्मं च पिधानार्थं च बस्तमाचार्याय द्वात्॥ ३३॥

भा०-श्रार कांस्यपात्र, वस्त्र श्रार चांनी भी अर्थात् जल अरा कांस्यपात्र उस पर चाँदी का उक्कन रख कर देखे, श्रार वस्त्र ढाकने के लिये श्राचार्य की देवे ॥ ३३ ॥

अनुमनचनीयेष्ट्रचं साम सदसस्पतिमिति चाज्यं जुहुयात्।।

प्रवचनात् पश्चात् क्रियत इत्यनुप्रवचनीयहोमः । चकारम्समुबयार्थः । उपनयनिवसगेंऽस्माभिक्तानाम् । आज्यमिति प्रतिनिधिवर्जन्मार्थं, अलाभेऽपि कालोस्कर्ष एवेति । संहिताश्रवण्रहस्यविधयो गृह्यविशेषादृष्ट्रच्याः । सर्वानुसारेणास्माभिद्यनयनमुक्तम् । अथोक्तेन प्रकारेण गोदानत्रनमुपाकृत्य तिस्मन् संवत्सरे, 'अप्र आयाहि' इत्यादि,
'वर्मीव घृष्ण् वाकृ इत्यन्तमृचमध्याप्य 'ओप्नायी' इत्यादीनि चान्नयेन्द्रपावमानानि पर्वाण्यध्यापयीत । पूर्णं संवत्सरे उपनयनविसर्गविद्वसर्गं कुर्यात् । नात्र प्रागुद्रयात् गमनियमः वामदेव्येन प्रवेशनिष्क्रमणे
वामदेव्यादीनि श्रयोऽन्तानि सप्ताहादीनि कल्मापान्तानि च निवर्तन्ते ।
गायत्रस्य स्थान आग्नयेन्द्रपात्रमानानि पर्वाणि श्रावयेत् । अशक्तश्चेत्
पर्वाचन्तानि सामानि, 'क्षोमं राजानप्', 'इत एत उदारुहृन्,', 'स पूर्व्यां
महो नाम्', 'अभित्रिष्ट्रष्टम्' इति च श्रावयेत्। अनुप्रवचनीये गोदानत्रतमचारिषमिति मन्त्रविकारः । अथ वृातिकमुपनयनवत्सर्वं कुर्यात ।
आतिकमिति मन्त्रविकारः । तिस्मन् संवत्सरे, 'इन्द्रज्येष्ठं न आमर'
इत्यादि, 'सुप्रपाण इहस्ते' इत्यन्तमृचमध्याप्याकृद्वन्द्वत्रतानि झान्दसानि

त्रीणि पर्वाण्यध्यापयीत । स्रादित्यत्रताभावपत्ते शुक्रीयमपि पूर्णे संव-त्सरे उपनयनविसर्गवद्विसर्गं कुर्यात् ।गायत्रस्य स्थाने छान्द्सानि पर्वा-णि श्रावयेत् त्रशको गोदानवृतवत् । त्रातिकादित्यवृतमहानाम्निकौप-निषदेपु नास्ति संहिताहोम इति केचित्। श्रावणवत्पूर्वो होमस्संहितां-ध्ययनार्थस्वात् संहिताहोम इत्युच्यते । इमं होमं हुत्वाऽऽग्नेयादीनां पर्वणां चाध्ययनं संहिताध्ययनिमत्युच्यते । वृा'तक्वतानन्तरमादित्यव्रतं तस्य वृतिकवदुपाकरणम् । तिसन् संवत्सरे शुक्रियाध्ययनं तहिम-म्मह् । उपनयनविसर्गवद्विसर्गं कुर्यान् । गःयत्रस्य स्थाने शुक्रियाणि । अशर्को पूर्ववत् 'त्रादित्यवतम्' इति मन्त्रविकारः । ऋथ महानाम्नि-कस्योपनयनवदुपाकरणविस्रगौँ । 'महानाम्निकव्रतम्' इति मन्त्रविकारः गायतस्य स्थाने शक्वर्यः । शेषमुक्तम् । अथोपनयनवदौपनिपद्वृतम् । 'उपनिषद्रतम्' इति भंत्रविकारः । गायत्रस्य स्थाने 'देव सवितः'इत्यादि 'न च पुनरावर्तते' इत्येवमन्तं स्यात् । कृत्स्नश्रवणाशकौ यजुरोकारा-द्त्यप्राणानामाद्यन्तानि वाक्यानि सोमं राजादीनि च श्रावयेत्। अथ ज्येष्ठसामवृतमुपनयनवत्सर्वम् । 'ज्येष्ठसामव्रतम्' इति मन्त्रविकारः 'भंतिकत्रतम्'इति वा । गायत्रस्य स्थाने आज्यदोहादित्रियम् । अथ ब्रह्म सामत्रतमेवम् । रुच्या चरणकालानियमः । 'त्रह्मसामवृतम्' इति मन्त्र-त्रिकारो गायत्रस्य स्थाने तवश्यावीयम् । 'ऊर्क्' इत्यादिः 'हिंवम्' इत्यन्तं तवश्याबीयमिति केचित्।। इलान्दं पञ्चानुगानमिति केचित्। शाखान्तरस्थमित्यन्ये । गोदानादीनि चत्वार्येव वृतानि चत्वारि वेद्वू-तानि' इति गौतमवचनात् । ऋादिस्यवृताभावपचे ऋौपनिपदसंहितानि चत्वारि स्युः । वृतचतुष्टयपत्ते तूपनयनं सर्वार्थत्वात्र गण्यते वृतत्वेन । वृताभेचाणां वेदभागानां वृतकालेऽध्ययनाशक्तौ वृतकालोत्कर्पः कार्यः। समाप्य वा वतनियतकालमधीयीत । इतरस्य तु वेदभागस्य न काल नियमः तथा वेदाङ्गानाम् ॥ ३४ ॥ ऋथ प्रकृतमनुसरामः—

भा०—इन्द्र देवताक स्थालीपाक चरु प्रस्तुत करे और इस चरु को यथाभाग प्रहण कर "ऋचं साम यजामहे०" मन्त्र या "सद्सस्प-तिमद्भुतम्" मन्त्र पढ़ते हुये आज्य की आहुति देवे॥ ३४॥ वित्ययूपोपस्पशनकर्गाकोशाक्षिवेपनेषु सूर्याभ्युदितस्सूर्या-भिनिर्मुक्त इन्द्रियेश्व पापस्पशेः पुनर्मामित्येताभ्यामादृतिं जुहु-यात् ॥ ३५ ॥

यूपाग्रिचयनयोः कर्मापवर्गादृष्त्रं मुपरपश्चे दोषोस्तीति तन्निर्द् रणार्थभिदं, श्रोत्रे शन्दितं वामच्छु कम्पे च दुनिमितत्वात्तिर्हरणार्थं, स्वपन्तं सूर्योऽभ्युदियादस्तिमयाद्वा तत्र दोपनिर्हरणार्थं, मनसा निभिद्धं चिन्तिते चत्रुपा निभिद्धं दृष्टं श्रोत्रेण निभिद्धं श्रुतं वाणेन निभिद्धं आवान वाचा निभिद्धं भाषतं एवभिन्द्रियैः पापकृद्धियक्तस्तदोपनिर्हरं-णार्थं जुहुयात् आज्यतन्त्रेण, पिचरणतन्त्रण वा 'पुनर्मनः' इति द्वितीयमन्द्राद्धः ॥ ३४ ॥

भा०-आश्चर्यजनक यटना होने पर अर्थान अचानक बोहरूप प्रकट होने, कान में किसी प्रकार का शब्द होने, नेत्रों में स्फुरण होने आर सूर्योद्य के पीछे जागने, या सूर्यास्त समय नींद आने आर भी हाथ आदि इन्द्रियों के द्वारा पराई स्त्री के स्तनों पर स्पर्श करने पर "पुनर्मामैत्विन्द्रियम " इत्यादि दो मंत्रों से दो आज्य की आहर्ति देवे ॥ ३५ ॥

श्चाज्यत्तिप्ते वा समिर्घो ॥ ३१ ॥ समित्तन्त्रेण ॥ ३१ ॥

भा०-यदि अतिरिक्त पाप स्पष्ट न हो जावे तो घी से लपेटी हो समिधा अग्नि में डाले ॥ ३६॥

जपेद्वा लघुषु जपेद्वा लघुषु ॥ ३७ ॥ अल्पेषु पापेषु । द्विर्हाकरादरार्था । पटलसमाप्तचर्था वा ॥ इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ द्वितीयस्य पटलस्य पञ्चमः खरडः

समाप्तश्च द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥ १ ॥

भाव-आँग यदि छोटा पाप हो तो उक्त दोनों मन्त्रों की मन ही मन जप करे।। ३७॥

> इति खादिरगृह्यस्त्रवृत्ति के दृसरे पटल के पञ्चम खण्ड का भाषानवाद परा हुआ।। २। ४॥

आप्रवने पुरस्तादाचार्यकुलस्य परिवृत आस्ते ॥ १ ॥

'तयोरासवनं पूर्वम्' इत्युक्तिमदानीं पुरुषस्योच्यते । आसवनं स्नानम् । अत्र कर्त्रन्तरानिर्देशेन स्वयमेव सर्वं कुर्यात् । आचार्यगृह-स्याप्रे भागे प्रावृते देशे उदग्रेषपूपिवशेत् ॥ १॥

भा०-अव "विधिपूर्वक रनान" को कहते हैं। विवाह करने के लिये आचार्य की आज्ञा पाने के पश्चात् अग्रचारी ब्रह्मचर्य की समाप्ति सूचक स्नान करे आचार्य के परिवार के रहने के घर से उतर या पूर्व दिशा में अच्छे प्रकार आच्छादित एक स्नान घर वनवावे॥ १॥

उदङ्गुल आवार्यः मागप्रषु ॥ २ ॥

तस्य दक्षिणत उपविशेत्।। २।।

भा॰—इस स्नानागार में पूर्वाप्र डाले हुये कुशासन पर उत्तर मुंद हो आचार्य बैठे कुमार के दक्षिण भाग में श्रीर उत्तराप्र डाले हुये कुशों पर पूर्व मुंद हो ब्रह्मचारी बैठे॥ २॥

एवं ब्रह्मवर्चसकामः ॥ ३ ॥

नित्ये कामोपवन्योऽयम् ॥ ३ ॥

भा०-त्रह्म तेज चाहने वाले तो पूर्वोक्त प्रकार वैठे ॥ ३॥

गांष्ठे पशुकामः ॥ ४ ॥

स्पष्टम् ॥ ४ ॥

भाव-गरन्तु जिसको पशु वृद्धि की कामना हो, वह गोशाला में स्नान करे॥ ४॥

सभायां यशस्कामः ॥ ५ ॥

त्रहास्थाने ॥ ५ ॥

भा०- स्रौर यश की कामना वाले वेद पढ़ाने की जगह स्नान करें ॥ ४॥

सर्वेषिधेनापः फाणयेत् ॥ ६ ॥

सर्वेरोवधिफलैर्यथालामं संयोज्यामिनाऽपः फाण्येत् तापयेत्

यः कश्चित् ॥ ६॥

भा०-सुगन्ध, कच्चा, पक्का, मिला +सवांपिध नामक श्रोष-धियों से फाएट (सन द्रव्यों को कूट गरम जल में छोड़ कर कपड़े से ढाक देकर जल का नाम फाराट है)॥ ६॥

सुरभिश्र ॥ ७ ॥

सुगन्विभिश्च संयोजयेद्यः॥ ७॥ भा०-सुगन्वियों से उम जल को युक्त करे॥ ७॥ ताभिश्शीतोध्णाभिगचार्योऽभिषञ्चेत् ॥ ८॥

तप्ताभिश्शीतोदकसंयुक्ताभिश्शिष्यमूर्धन्यवसिक्वेद्वद्यमाणप्र-

कारेख ॥ = ॥

भाग्न-फाएट किये जल से आचार्य ब्रह्मचारी को अभिधिस्त्रन करे।। = ॥

स्त्रयं वा मन्त्राभित्रादात् ॥ ९ ॥ मामिति मन्त्रलिङ्गात्॥ ६॥

भाश-या उसके पश्चात् ब्रह्मचारी स्वयं आये को अभिपिञ्जित करे॥ ६॥

उभावित्येके तेनेपित्याचार्यो ब्र्यात् ॥ १०॥ 'तेनाहं मामभिषिञ्चामि' इत्यत्र 'तेनेममिषिख्वामि' इति॥ भा०-ब्रौर कोई २ त्राचार्य कहते हैं कि दोनों ही त्राभिषिख्वन करें॥ १०॥

ये अप्तित्वत्यपामञ्जलिमवसिञ्चेत् ॥ ११ ॥

उ रानयनवद्न्यः पूर्येत् भूमाववाञ्चं सिञ्चेद्भिषेक्ता ॥

भा०-स्वयं वृह्मचारी जब आयेको आभिषिञ्चन करे तब पहिले पाँच मंत्रों से जल की अञ्जलि से जल का व्यवहार करे अन्त में बाकी जल एक ही बार में अपने मस्तक पर ढार देवे। उनमें पहिले दो मंत्रों से लिया शेष अञ्जलि जल भूमि पर डाल कर तीसरे आदि तीनों मत्रें।

<sup>+</sup> कूट, जटामांसी, हल्दी, वच, शिलाजीत, चन्द्रन लाल, कपूर, भद्रमुस्ता को सर्वोवधि कहते हैं।

में मस्तक त्रादि सब शरीर को तिचन करे। "के ऋष्स्वन्तरप्रयःः" सन्त्र से एक ऋक्षति जल पृथ्वी पर गेरे॥ ११॥

यदपाभिति च ॥ तूर्व्यां च ॥ १२-१३ ॥ स्पष्टे ॥

भा०-किर "यद्पां०" मंत्र को पढ़कर एक अङ्जलि जल भूमि पर डाले और एक अङजलि जल बिना मन्त्र पढ़े ही जमीन पर डाले॥ १२॥१३॥

यो रोचन इति मृह्यात्मानमभिषिक्चेत् ॥ १६ ॥

पूर्व रदं अलिना पूर्ण गृहीत्व। । गृह्य त्यसमासेऽभि बहुत्तव मनात् लयप् कृतोऽस्य बहु निषयत्वं योतियतुम् । अतो गृहीत्व। मृहीस्वाऽसि-रेकः । आत्मानिमिति शिष्योप तत्त्वसार्थं, अत्राचार्योऽपि शिष्यमेवा-भिषिञ्चेत् ॥ १४ ॥

भा?—श्रौर "योरोचनस्तिमह्०"मन्त्र से एक श्रञ्जलि जल ब्रह्म-चारी अरने माथे श्रादि पर सिञ्चन करे॥ १४॥

येन स्त्रियमिति च ॥ तृष्णीं च ॥ १५-१६ ॥

₹पष्टे ॥

भा० — त्रौर फिर "येन स्त्रिय०" इत्यादि मन्त्र को पढ़कर तीसरी अञ्जलि से अपना मस्तकादि सिब्बिन करे, श्रौर विना मन्त्र पढ़े चौथी अञ्जलि अपने माथे पर ढार देवे ॥ १४ । १६ ॥

जयन्त्रत्यादित्यमुविष्ठेन् ॥ १७ ॥

अनार्नेण वस्त्रेण परिधायाचम्योद्धमेषु स्थित उपतिष्ठेच्छिष्यः॥ भा० च इसके बाद नहाने की जगहपर भी सूखा कप्रदा पहन कर खड़े हो "उद्यन् भ्राजभृष्टिभिः०" सन्त्रों में से किसी एक मन्त्र से सूर्य की आराधना करे॥ १०॥

समस्येद्वा ॥ १८ ॥

'त्रातर्याविभास्थात् सान्तपनेभिरस्थात् सायंयाविभारस्थात् दशस-निरिक्ष शतसनिरिक्ष सहस्रसनिरिस दशसनि मा कुरु शतसनि मा कुरु सहस्रसनि मा कुरु' इति समासः॥ १८॥ भा० —या मन्त्रों के लज्ञण से जिसमें 'प्रातः' शब्द पढ़ा है उसी के अनुसार "प्रात गीवित्रस्थान् सान्तपनेभिरस्थान् सायं यात्रभिरस्थान् दशसनिरिस शतसनिरिस सहस्रक्षित्रस्थान् दशसनिंभां कुंक शतसनिं मा कुक्"-ऐसा संमास कर-प्रयोग करे।। १८॥

### विहरत्र नुसंहरेच्चक्षुरसीति ॥ १९ ॥

यथाराठं ब्रुवन 'त्राविश' इत्येषामनन्तरं 'चतुरिस' इत्यादि त्रिरनुषज्य ब्रूयात् ॥ १६ ॥

भा०—उक्त तीन मन्त्रों में से जिसमें 'प्रात.' शब्द पढ़ा है उसका प्रातःकाल के उपस्थान में प्रयोग करे, और जिस मन्त्र में मध्याह बोवक 'सान्तरन' शब्द पढ़ा है उसको मद्याह्वकाल के उरस्थान में पढ़े और 'सान्तरन' शब्द पढ़ा है उस मन्त्र को सायंकाल के उपस्थान में पढ़े, बहुरिस बहुष्ट्व मस्यव मे पाप्मानं जिह । से मत्त्वा र जावतु नमस्तेऽस्तु मामा हि थ सी: 2" मन्त्र को प्रोतःकाल खादि पढ़ने योग्य ("उद्यत् प्राजयृष्टिभः अविद ) तीनों मन्त्रों के पीछे वांध देवे खर्यात् इन मन्त्रों के साथ यह मन्त्र सदैव अवश्य पढ़े ।। १६ ।।

उदुत्तपिति मेखलामवमुञ्चेत् ॥ २० ॥

पाश्यवापयेच्छिखावर्जं केशश्मश्रुलोमनखानि ॥ २१ ॥ स्पष्टे ॥

भा०-उसके परचात् "उदुत्तमम्०" मंत्र को पड़ कर त्रह्मचर्य समय की पहनी हुई मेखला को नीचे को त्याग देवे ॥ इस प्रकार स्नान कर मेखला त्यागने पर गृहस्थ आश्रम प्रवेश करते समय ब्रह्मचारी कई एक ब्राह्मण को भोजन करावे और पीछे आप भी भोजन करे और नापित से मृंझ, रोम, नख आदि कटवावे ॥ २०॥ २१॥

अलंक तोऽहतवाससा श्रीरिति स्रजं प्रतिग्रुञ्चेत् ॥ २२ ॥
द्वो नववस्त्रे परिधाय स्रजं वलयाकृतिं कृत्वा शिरिस प्रतिग्रुञ्चेत् ॥
भा०—उक्त प्रकार कर्मों के कर चुकने पर भूषण आदि पहन
अलएड दो वक्ष उपर नीचे पहन ओढ़ कर "श्रीरिस मिय रमस्व",
मंत्र पढ़ के माला को शिर में बाँधे ॥ २२ ॥

नेज्यौ स्य इत्युपानहौ ॥ २३ ॥

पादयोः प्रतिसुक्चेत् ॥

भा॰--नेज्यौरथो नयतं माम्०'मन्त्रसे दोनों पैरोंमें जूता पहने ॥२३ वैणवं दएडमादध्यात् गन्धर्वोऽसीति ॥ २४ ॥

रमृत्युक्तलच्यां दण्डं गृह्वीयादित्यर्थः॥

उपेत्याचार्यः परिषदं मेक्षेद्यक्षमित्रति ॥ २५ ॥ ज्ञाचार्यसमीपं गत्वा संसदं पश्येन्मन्त्रेण ॥ भा०-उसके पश्चात् शिष्योंसे घिरेहुये ज्ञाचार्यके पास वैठहर"यज्ञ मित्र प्रियोवो भूयासम् भात्र पढ़के ज्ञाचार्य के परिषद् को देखें ॥ २४

उपविष्यौष्टापिधानेति मुख्यान् प्राणानभिमृशेत् ॥ २६ ।

दर्भेपूपविष्य चत्तुषी श्रोत्रे नासिके चाभिमृशेन्मन्त्रेण ॥

भा० — अर्द्धापवेशन कर अपने मुख में आये हुये श्वास वायु का अनुभव करते हुये "ओष्ठापिधामा नकुली०मन्त्र पढ़े और दुशासन पर बैठ कर दोनों नेत्र,कान, नाकके छिद्र अभिमर्शन करे मंत्र पढ़कर ।२६.

गोयुक्तं रथनालभेत् वनस्पत इति ॥ आस्थाता त इत्या-रोहेत्॥ प्राचीं प्रयायोदीचीं वा प्रदक्षिणमावर्तयेत् ॥२७-२८-२९ स्पष्टानि ॥

भा०—इस प्रकार यात्रा के लिये बैल के रथ पर सवार होना हो तो उसके चक्र या जूआ को छूकर "बनस्पते० मंत्र पटें। श्रीर आस्था-ता ते जयतु०' मैंत्र पढ़ कर रथ पर सवार होवे। इस रथ पर पूर्व मुंह या उत्तर मुंह बैठकर रथ चलावे, श्रीर श्रपनी वासभूमि को चारों श्रोर प्रदक्षिण क्रम से घुमा कर, चलावे। २७। २८।

प्रत्यागतायार्घ्यमत्येके ॥ ३० ॥

प्रत्यागताय मधुपके दद्यादाचार्यः ॥ उक्तमासवनं, त्र्यत उद्धे स्नातः कस्य कृतविवाहस्याकृतविवाहस्य च साधारणधर्मानाह— भा०—बहुत दिनों तक गुरुकुल में बासपूर्वक कृत ब्रह्मचर्य चेद पढ़े हुये ब्रह्मचारी को परिवार गण अर्ध्य आदिसे सतकार करें ऐसा किन्हीं आचार्य की राय है।। ३०

बृद्धशीली स्यादत ऊर्ध्वम् ॥ ३१ ॥

द्र्पादिपरिवर्जक इत्यर्थः॥

भा?-- न्र अचर्य समाप्त करने पर विवाह के पहिले आश्रम सिन्ध समय तक गृहस्यधर्म का पालन करे, उससे पिता, माता, प्रभृति वृद् लोगों की सेवा में परायण और सुपुष्ट बुद्धि होवे ॥ ३१ ॥

नाजातलोम्योपहासमिच्छेत् ॥ ३२ ॥

िवाहारू वें मैथुनप्रसक्तौ अजातलो म्या असमर्थया मैथुनं तद्थीं चेष्टां च न कुर्यादित्यर्थः॥

भा भा भा किस कन्या को अन्तर्लोम न उत्पन्न हुये हों इस प्रकार रस से अनिभज्ञा वालिका के साथ उपहास करने की इच्छा न वरे ॥३२॥

नायुग्व्या ॥ ३३ ॥

श्चस्त्रास्थ्येनाशक्त-यादिनाऽयोग्योपहासं नेच्छेत् पीडाहेतुत्वात् तस्याः ॥

भा॰—उक्त प्रकार आदि मैथुन के अयोग्य (आयु, रूप, गुण, प्रभृति में ) उपहास परित्याग करे ॥ ३३॥

न रजस्वलया ॥ ३४ ॥

स्वभार्यया आस्नानात्।।

भा०-अपनी श्री जो रजीधर्म के वारण दृपित है उसके साथ भी मैथुन न करे ॥ ३४॥

न समानष्यां ॥ ३५ ॥

समानार्षेययाऽशीद्विवाहस्यापि प्रतिषेधः ॥

भा०-श्रीर न पर स्त्री के साथ उपहास करे।। ३४॥

अपरया द्वारा प्रयन्नद्विःपकपर्युषितानि नाश्लीयात्॥३६॥ यश्च कुद्वारप्रवेशितं यञ्च योग्यमेच द्रव्यं पक्षमेव प्रनः पच्यते। त्रीहिमूलफलादेम्तु संस्कारार्थं द्विपक्तस्याप्रतिषेषः । यच्च पक्सुवःकाल मत्येति तत्र भुञ्जोत ॥

भा० - अन्य किसी गुप्त रीति से प्राप्त अस्त्र भोजन न करे, दो बार का अस्त्र भोजन न करे, और पर्युपित अस्त्र भोजन न करे। ।३६।।

अन्यत्र शाकमांसयविष्टिकारेभ्यः ॥ ३७॥

द्वि.पकपर्युषितयोरभ्यनुज्ञा ॥

पायसाच ॥ ३८ ॥

अन्यत्रेत्यनुवर्तते । चकारः पयोविकाराणां च संब्रहार्थः ।।

भारं — कंद, मूल, फलादि द्वारा तैयार किया हुआ मांस की नाई यब आदि अन से सम्पन्न जलेबी आदि या अन किसी प्रकार का खाद्य मिष्टानादि वासी होने पर भी खावे इसमें पर्युषित होने का दोष नहीं।। ३७। ३५।।

फलम वयनोद्पानावेक्षणवर्पतिथा । नोपानत्स्वयंहरणानि न कुर्यात् ॥ ३९ ॥

उत्पत्तिस्थाने प्रकीर्णाना फलानां सङ्घीकरणं प्रचयनम् । कूपादा-ववाङ् मुखनिरीच्चणम् । वर्षति सति तहेशाद्धावनम् । स्वयोरुपानहोई-स्तादिना धारणम् । रज्ज्वादिन्थवधाने न दोपः ॥

भाउ-ानी वर्षते समय या वर्षने पर की चड़ अरे रास्ते में दाँड़ कर न चले, अपना जूता स्वयं हाथ में लेकर न चले । आम आदि फलों को पेड़ों से तोड़ कर स्वयं न जमा करे।। ३६॥

नागन्यां स्नजं धारयन चेद्धिग्एयस्नक् ॥ ४० ॥

स्पष्टम ॥

भा०-विना गंध की माला को माथे में न धारण करे परंतु सोने की माला तो गन्ध रहित होने पर भी धारण करे ॥ ४० ॥

भद्रिपिति न तृथा व्याहरेत् ॥ ४१ ॥ भद्रभित्यकारणाञ्च वदेत् । उक्ता नियमाः॥ जो वस्तु अच्छी,न हो उसको अच्छा है ऐस। न कहे । ४१ पुष्टिकामा गाः प्रकालयेतेमा म इति ॥ ४२ ॥

पशु इद्धिकामः प्रातगृ हान्निर्गमयेत् ॥

भा०-चारण भूमि में चराने के लिये गाँ आदि को घर से बाहर ले जाते समय "इमा मे विश्वतो वीर्यः" मन्त्र को पढ़े ॥ ४२

पत्यागता इमा मधुमतीरिति ॥ ४३ ॥

सायं प्रत्यागता ऋभिमन्त्रयेतेत्ययमेकः कल्पः ॥ ऋथापरः— भा०-ऋार जब चर कर गाँ घर को ऋ।वे तो "इमा मधुमती०" मंत्र पढे । ४३ ।

पृष्टिकाम एव प्रथमजातस्य वत्सस्य पाङ्मातुः प्रलेहना-छत्ताटमुहिद्य निगिरेत् गवामिति ॥ ४४ ॥

संबत्सरे पूर्वं जातस्य ॥

भा॰ – जो लोग पुष्टि की कामना करें, वे गाँ के बत्स को जन्म के साथ ही जब तक उसकी अपनी मा उसको चाटे या न चाटे, पुरुष अपनी जीभसे बत्स का ललाट चाटे। यों चाटते समय मुंह में अश्ये हुए लार को "गवां श्लेष्गासि०" मन्त्र मन ही मन पढ़ कर निगल जाने। ४४

संप्रजातासु गोष्ठे निशायां विलयनं जुहुयात् संग्रहेगोति ॥ सर्वासु संप्रजातासु सायमाहुत्यनन्तरमाज्यतन्त्रेण । अयमप्येकः कल्पः ॥ अथापरः पुष्टिकामस्यैव—

जिनको पुष्टि की कामना हो, वें रात में गों के बचा जनने पर घर में अच्छे प्रकार आग जलाकर "संप्रहर्ण संगृहाण् यह मंत्र पढ़ते हुये "विलयन" (आधा मठा हुआ ढाथ) होम करे। ४४।

त्रयापरं वत्सिमथुनवरेः कर्णे लक्षणं कुर्यात् भुवनिमिति ॥ पुंसः क्षियाश्च कर्णेषु चिह्नार्थं छेदनं कुर्यात्स्वधितिना ॥ पुंसोऽग्रे ॥ ४७ ॥

प्रथमभित्यर्थः ॥

भाव-जो लोग पुष्टे की इच्छा करें वे गूलर की लकड़ी की बनी

लाल तर दार से नये उत्पन्न बचे के दोनों कानों को इस प्रकार चिक्ष कर देवें कि (यदि जोड़ा पैदा हुन्ना हो) पहिले बाछे को फिर बिल्लया को। दोनों कानों में चिन्ह करते समय "भुवनमसि साहमः" मंत्रों को पहें। ४६। ४७।

लांहितेनेत्य तुमन्त्रयेत् ॥ ४८ ॥

तूःशीमन्यासामपि लज्ञ्णं कृत्वा सर्वा एवानुमन्त्रयेत ॥ भाः—डक प्रकार चिन्ह् करने पर "लोहितेन स्वधितिना" मंत्र पढ़ें । ४= ॥

तन्तीं मसारितानियं तन्तीति ॥ ४९ ॥

निर्गतासु गोयु बन्धनार्थरज्जुमिशमन्त्रयेत । श्रयमप्येकः कंल्पः । एते कल्पा श्रहरहराफलसिद्धेः कार्याः ॥

> इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ तृतीयस्य पटलस्य प्रथमः खण्डः ॥३ । १॥

भा०-- "इयं तन्त्री गवां माता ग" मंत्र की पढ़कर वत्स की बांघने की रस्सी को सुखावे॥ ४६॥

इति खादिरगृह्यसूत्र के तीमरे पटल का पहिला खरड का भाषानुवाद समाप्त हुआ।। ३ । १।।

श्रावएयां पौर्णमास्याँ मृह्माद्ग्रिमनिमणीय प्रनिदिशसुप-लिम्पेद्रिके प्रक्रमं ॥ १ ॥

श्रावण्यामित्येव सिद्धं पौर्णमास्य मिति श्रान्यत्रापि श्रावणीमहणे पौर्णमास्यर्थं 'श्रावणीमित्येकं' इत्यत्र । इतरथा हरते स्यात प्रकृतत्वात्। उपवस्थ्येऽह्नि पूर्वाह्वं पश्चद्रयामेतत्कुर्यात् । यदि पूर्वाह्वं पश्चद्रशी न विद्यते यजनीयेऽह्नीदं कृत्वा पौर्णमासं कुर्यात् । एवमुत्तरेष्वपि कर्मसु निर्वापशून्यांस्तर्ग्जुलान् गृद्धा ऽमौ भिजतान् कृत्वाऽर्थं निधायार्थं सक्तृत् कृत्वा श्रोप्य शूर्पं श्रानेकृत्तरतो द्भेंतु शूर्पमुद्कपूर्णं पात्रमन्यकोदकपात्रं दवीं द्रमम्तम्बं च नियाय गृद्धाग्नेः पुरस्तान् द्विपद्मतीत्याग्नेद्विणतो गत्वाऽभ्युन्नणान्तं कृत्वा गृद्धाग्नेरेकदेशं प्रणीय तत्र निधाय तस्य प्रतिदिशमेकमेकं पद्मतीत्य प्रागुयकमं प्रदक्तिणं गोमयेनोपलिम्पेत्।।

भाव-अव अवसा कर्म का आरम्भ करते हैं, वह कर्म आवस्स मास की पूर्णमासी में करना चाहिये। जिस घर में नित्य अस्तिहोत्र का अस्ति स्थापित हो उसी घर के पुरोमार्ग में गौ के गोवर से लोप कर अस्तिहोत्र से कुड़ अस्ति लेकर अलग विधि पूर्वक प्रज्वित करे। उस नये स्थापित अस्ति की चारों और चार स्थान भी गोवर से लीपे और प्रत्येक दिशा में कम से कम तीन पर्ग स्थान लीपे।। १।।

मक्रद्रगृहीत।न् मक्तून् द्रव्यां क्रत्वा प्वीपुलिप्ते निनी-यागो यः पाच्यापिति विलं निर्वपृत् ॥ २ ॥

द्त्रिथ शिक्षमशोहपित्तप्रस्थानयोरन्तरोपिवश्य पूर्णपात्रात्पात्रान्तरे किंचिदुद्कं नितीय तद्र्धं पूर्विस्मिन्तुपित्तप्रशाने पाणिनाऽऽसिच्य तनैव पाणिना द्रवर्षं सक्तृन नियाय उपित्तप्रस्थाने द्रवर्ष मन्त्रेण सक्तृत्रिद्ध्यात् ॥

भा०—इतके पश्चात् उस द्वीं से एक ही बार में पूरा सत्तृ उठाले त्रीर पूर्व दिशा में गोवर से लीपे हुये स्थान में उस चमसपात्र में रक्खा जल सींच कर उसके ऊपर क्रम से "यः प्राच्यां०" मंत्र से विल भाग रक्खे ॥ २॥

निनयेद्गां शेषम् ॥ ३ ॥ शिष्टमर्थमराम् ॥

भा॰—उस चमस पात्र के बचे जल को उस बिल पर छीटे। इस जल को इस प्रकार छीटे जिससे बाल ख्रादि वह न जावे॥ ३॥

त्रप उपस्पृश्यें गतिदिशं यथातिङ्गम् ॥ ४ ॥

पाणी प्रदालय यथालिङ्गं मन्त्राः॥

भा॰—दो.ों हाथ जल से घोकर जिस २ दिशा के विधायक जो २ मंत्र हैं उन मंत्रों से प्रत्येक दिशा में, इसी एक स्थान में रहते हुए थोड़ा बाई ब्रोर हठकर, फिर दिल्ला ब्रोर एक बलि, पश्चिम अरोर एक और उत्तर ओर भी एक वित रक्ते और उस २ वित के देते समय शेव तीन मन्त्रों की अज्ञात २ पढ़े।। ४।।

दक्षिणपश्चिम अन्तरेणाप्तिं च संवरः ॥ ५ ॥

दिच्च एस्यो गित्रप्तस्याग्नेश्चान्तरेण पाणी प्रसार्य पूर्वे कुर्यात्। पश्चिमस्याग्नेश्चान्तरेणोत्तरे कुर्यात्। स्रानित्रणीतस्योत्तरत एव द्रव्याणि स्युः। तद्देशा ग्रावदर्थमे वोपादायोपादाय चित्रकर्म।।

भार-नैऋिन्य कोण में जाने आने का रास्ता छोड़कर, जहां चाहे उस सत्त् को रक्खे ॥ ४॥

शूर्पेण शिष्टानमानोप्यानिमणीताद्दनतिमणीतस्यार्घं गत्वा नयञ्जी पाणी कृत्वा नमः पृथिच्या इति जपेत् ॥ ६ ॥

सर्वान् सक्तूनतिप्रणीतेऽम्रावोष्यानतिप्रणीतम्य पश्चात् स्वस्थानं गत्वोपविश्यावाञ्चौ पाणी भूमौ निधाय जपेत्।।

भा० — आँर अवशिष्ट सत् आदि उसी अग्नि में डालकर जिस अग्नि से कुछ आग लेकर यह अग्नि प्रम्तुत हुआ है उसी चिर-स्थाई अग्नि के पास जावे। उस अनतिप्रणीत विरस्थापित अग्नि के पीछे दोनों हाथ जमीन पर औंचे धर कर "नमः पृथिव्यै०" मन्त्र को पढ़े ॥ ६॥

तत उत्थाय सोमो राजेति दर्भस्तम्बग्रुपस्थाय ।

स्तम्बस्थान् सर्वान् मनसा ध्यायन् 'यां संधाम्' इति नमस्कुर्यान्म-न्त्रलिङ्गात् । श्रतः परं प्रणीतस्य लौकिकत्वम् ॥

भा०-उस ऋग्नि के उत्तर भाग में मूल के साथ कुशपुञ्ज स्थापन कर "सोमो राजाः" मन्त्र ऋौर "याःश्र सन्धाःश्र" मन्त्रों को पढे़ ॥ ७॥

अक्षतानादाय प्राङ्वोदङ्वा प्रामानिष्क्रम्य जुहुयादञ्ज-लिना हये राक इति चतस्रभिः॥८॥

निहितानज्ञतारं गृह्याप्तिं च गृहीत्वाऽभ्युज्ञणान्तं कृत्वाऽप्तिं निधाय परिचरणतन्त्रेणाविच्छित्रगांगुल्यप्रैर्जुहुयादाहुतिमन्त्रम् ॥ भा०—पूर्व कर्मों से कुछ श्रज्ञत बिल बचा रक्खे। इसी की एक र श्रज्जिल कर "हुये राकें०" इत्यादि चार मन्त्रों से चार आहुति देवे यह होम गांव से बाहर निकल कर पूर्व या उत्तर दिशा में किसी चौराहे पर श्राग जलाकर करे।। ८।।

प्राङ्क्त्रम्य जपेद्वसुवन एथीति त्रिस्त्रः पतिदिशमवान्तर-देशेषु च ॥ ९ ॥

होमं समाप्योत्तरतोऽग्नेः प्राचीं गत्वा प्रागुपक्रमं प्रदक्षिणमग्नेर-ष्टासु दिस्तु तिष्टन्नप्रथभिमुखस्त्रिस्त्रिर्नृयात् ॥

ऊर्घ्व पेक्षन देवजनेभ्यः ॥ १० ॥

'वसुवन एधि' इति त्रिर्वृयान्।।

तिर्यङ ङितरजनेभ्यः ॥ ११ ॥

तिर्यङ् प्रचन् इतरजनेभ्यो मनुष्येभ्यः त्रिर्वृयात् ॥

अवाङ प्रेक्षन् प्रत्येत्यानवेक्षत्रक्षतान् प्राश्नीयात् ॥ १२ ॥
होमशिष्टानिम च गृहीत्वाऽनन्यचित्तो गृहं प्रत्यागम्य भन्नयेत् ॥
भा०-उसके पीछे मकान में फिरने के लिये चलकर रास्ते में
किसी एक स्थान में ऊपर मुंह करके देवताओं के लिये "वसुवन एधि०"
मन्त्र को पढ़कर देने फिर पश्चिम मुंह हो, या दिन्नण मुंह हो, अर्थात्
घर के सम्मुख होने ही से टेढ़ा होना पड़ेगा, उसी तिरछा होते समय
नीचे देखकर अन्यान्य जीवों के लिये पुनः इस मन्त्र का पाठ करे।
प्रत्येक दिशा और अवान्तर म दिशाओं में बिल देते समय उक्त मन्त्र
को तीन तीन वार पढ़ता जाने और उस समय उस स्थान में जो सब
आत्मीय लोग उपस्थित हों उनके साथ होम से वची सामग्री भोजन
करे॥ ६॥ १०। ११। १२॥

श्वोभूतेऽक्षतसक्तृत् कृत्वा नवे पात्रे निधायास्तिमते बलीन् हरेद्राऽऽग्रहायएयाः ॥ १३ ॥

पूर्ववत् सक्तुकरणं, नार्धनिधानम् । सायंहोमानन्तरं पूर्ववदेव प्रतिदिशंगितिवानं शूर्पावयन्यंन्तं आ मार्गशीर्पयौर्णमास्याः ॥

भा०— उसके दूसरे दिन अपने पुत्र या पुरोहित आदि द्वारा यव का सत् प्रस्तुत कराकर नये पात्र में ढाक कर रक्खे। और इसी सत्तू से प्रतिदिन सायंकाल के पहिले पूर्ववत् विलिभाग यथा स्थान में प्रदान करे। अप्रहण महीने की पूर्णिमा के पूर्व दिन इसी प्रकार करे॥ १३॥

# भोष्ठपदीं इस्तेनाध्यायानुपाकुर्युः ॥ १४ ॥

प्रौष्ठपदे मासे हस्तेन युक्ते काले अध्यायात् वेदभागान् तदङ्गानि च उपविष्टास्संहता स्त्राचार्याश्रिश्राच्याश्च । नोपनयनादिवत् प्रत्येकम् । आङ् आदार्थे। आदावादौ कुर्युः अधीयीरन् वच्यमाणेन प्रकारेण । प्रौष्ठपदे हस्त इति वक्तव्ये बह्वन्यथोक्तं अन्यद्पि बहुस्मृतिसमाचार-सिद्धमत्र कर्तव्यमिति सूचियतुम्। तदुच्यते-यद्यस्मित्रं मासि हस्तद्वय-संभवे पूर्वस्मिन् हस्ते कुर्युः । नात्र पूर्वाह्वनियमः । प्रौष्ठपदीमिति सप्त-म्यर्थे द्वितीया, तस्याः कृत्स्नसंयोगार्थत्वात् । 'ऋर्धपञ्चमान्मासानधीत्य पौषीमुरसर्गः' इति वचनात् । पूर्वेदज्ञसम्भवाच पूर्वेहरतस्य । प्रौष्ठपद्याः पौर्णमास्यास्सन्निकृष्टस्वाच पूर्वरिमन् हस्त इति । पञ्जगव्यमपामार्ग चूर्णितं दूर्वास्तैलमामलकसुपिष्टं हरिद्राकल्कं तिलाचतान् पत्रास्थि पुष्पाणि फलानि मूलानि वन्यानि धूप दीपं गन्धमम्नि यज्ञोपवीतं दर्भाश्चादाय नदीं गत्वा तदलामे यथालामं महोदकं शुद्धजलं तदाकं गत्वा शिष्यैस्सह हर्षमाणो नाभिमात्रे सकुत्रगाह्याप त्राचम्य पञ्चगव्यं प्रार्याचम्य त्रिरेवं प्रगाह्य नैस्यं कर्त्र समाप्य उत्सर्जनकर्म हरिष्य इति संकल्प्य तीर्थं प्रचाल्यार्कपत्रेप्रगत्रेषु द्रभेषु विसिष्ठादीनां सप्तर्पीणाः एकां पङ्क्ति पांसुिषरहैः प्रकर्त्ये तथैव राखायनादीनाचार्यास्त्ररोदश शाट्यादीन् प्रवचनकत् आदश पङ्किंद्वयं प्रकल्प्य गङ्गादिषु नदीषु वसन्ती नां देवतानां नवानामेकां पङ्क्तिं प्रकल्प्य ब्रह्माणं वायुं मृत्युं ब्रेश्रवणं काश्यपमग्निमिन्द्रं प्रजापतिं चैकां पङ्क्तिं वंशानुसारेण प्रकल्प्यसाध्यानां मरुतां विश्वेषां देवानामष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजा-पतिश्च वषट्कारश्च त्रयश्तिरा इत्येषां चतुर्णां गणानामर्थे प्रतिगणमेकां

पङ्किं प्रकल्प्य मध्ययोः पङ्क्त्योः द्जि्णतो द्विष्याप्रेषु द्विणापवर्ग त्रीन् पितृनेकां पङ्क्ति प्रकल्प्य सर्वोत् वसिष्ठादीनत्रावाह्य सित्राहेतान् ध्यात्वा तेभ्यः स्वेपु स्वेपु पत्रेपु पवित्रमासनार्थं नियायाभ्यञ्जनार्थं तैलं प्रदाय शरीरपरिमार्जनार्थमपामार्गपिष्टं दत्वा केशप्रचालनार्थमामल कं दृत्वा 'आपो हिष्टा, तरत्समन्दी, यः पावमानीः, शुद्धवत्यः, सोमं राजानं, यत इन्द्र, ब्रह्म जज्ञानं, पवित्रं ते' इत्यृग्भिस्सामभिश्च स्नापनं क्रत्वाऽऽचमनार्थमुद्कं द्स्वा वस्त्रं प्रदाय पुनराचमनं द्स्वा यज्ञोपवीतं द्वा हरिद्राकल्कं मङ्गलार्थं द्वा श्रज्तपुष्पिश्रमुद्कमध्यं द्त्वा िषत्रभ्यस्तु तिलमिश्रमुद्कं द्युः 'गन्यद्वाराम्' इति गन्धं, 'ईडिष्व' इति इति भूपं, 'पवमानः' . इति दीपं, 'अर्चत प्रार्चत, अर्चित गायन्ति प्रागायत' इति द्वाभ्यां पुष्पाणि दृशुः। तत त्र्याचमरार्थमुद्दं दृःवा भोजनार्थं फलानि वन्यानि दृशुः। पुनश्चोद्कं ततो दृर्भाच्छतात्र पत्रेषु कृत्वा देवान् 'यथापूर्वम्' इस्यादि वंशं च मुचन्तः स्वैः म्वैस्तीथेरमुष्मा त्रमुष्मा इर्मुद्कं तृप्रयेऽस्त्विति ध्यायन्तम्तर्पयेयुः प्रतिनाम । पितृण्।-मत्त्रतस्थाने तिलाः। पित्र्यं सर्वं प्राचीनावीतिनः कुर्युः। देवर्षीणां सर्वं कृत्वा पश्चात्तर्पणं कर्तत्र्यम्। दैवं सर्वं प्राचीनावीतिनः। तता देव-र्षिपितृ गामुद्रासनं कृत्वा तानालोड्यावभृथसाम गायन्तः पांसुभिरा-त्मानसभ्युद्यापोऽभ्यवेयुः । एतद्वत्सर्जनं न म । ततो गृहं गत्वा यथा-विभवंगत्तंकुर्युः । त्र्यथाचार्यः उपाकर्म करिष्य इति संकल्प्य क्रस्स्नेऽग्नौ ब्रह्मोपवेशनान्तं कृत्वा सप्त क्रूचीन सप्तर्धन् संकल्प्य उदकपूर्णे कुम्भे साद्येत् । चतुरो वेदानेकं सादयन्ति । ततस्सर्वे स्नानाद्यर्चनपर्यन्तं पूर्वत्रत् कुर्युः ॥ अथ प्रकृतमनुसरामः--

भा० — भाद्रमास के जिस किसी तिथि के पूर्वाह्न में हस्त नज्ञ युक्त हो उसी दिन उपाकरण कर्म करे।। १४॥

श्रावणीमित्येके ॥ १५ ॥

श्रावएयां पौर्णम,स्याम्।।

भा० कोई कोई आचार्य्य इसको आवण की पूर्णमासी को फरना कहते है।। १४॥

### हुत्वोपनयनवत् ॥ १६ ॥

स्तरणादि कृत्वा समम्तान्ताभिर्होमः। नात्र 'श्रग्ने व्रतपते' इत्यादीनि अर्थलोपान्। शिष्याग्तु सहिता एव भवेयुः। नात्राग्वारम्भः अत्रतसंस्कारत्वान्। अथ होमसमापनं, ततो यज्ञोपवीतमेखले नवे प्राह्म शिष्यैः॥ तत आह—

## सावित्रीमनुवाचयेत् ॥ १७॥

बाचयेदिति सिद्धे श्रन्थिति सावित्र्याः पश्चाद्ग्यस्य वाचनार्थम् किं तद्तुवाच्यमित्याकांचावलान् 'उपनयनवन्' इत्यस्योपि सूत्रस्य रोग इति ज्ञायते । श्रतः पच्छोऽर्धर्चशः सर्वामेकैकशो ब्याहृतीनामों-कारस्य च वाचनं शिष्यःणाम् ॥

भा०—भूः, भुवः, स्वः, इन तीन मंत्रों का पाठ करते हुए तीनों आहुति देवे (वेदाध्ययन का आरम्भ करने के लिये समुपस्थित नये आहीं को उपनयन में उपदेश होने की नाई पहिले पाद र फिर आधी ऋचा और अन्त में समस्त ऋक् आदृत्ति कम से सावित्री मंत्र का अध्यास करावे॥ १६। १७॥

#### सोमं राजानं पर्वादीश्व ॥ १८ ॥

'सोमं राजानम्' इति ऋक्च साम च नियमतो यत्राध्येताो निरु-च अवासमुक्त्वा विरमन्ति चिरकालं ताबदेकं पर्व। अग्न आयाहि, तद्वो गाय, उचा ते, इन्द्र उपेष्ठम्, उपास्मै' इत्येकैकामुचं वाचयेत्। 'ओ ग्ना इं' तद्वौ हो वा, उच्चा' इत्येकैकं साम। यद्याकप्राणवाचोत्रतशुक्रियाद्यश-करीसामानि पञ्च। ऊहे सप्त स्तोत्रीयाः। तथा रहस्ये ब्राह्मणे पर्वा-द्यानि पद्ध वाक्यानि यावदेकार्थता। पद्विंशे सामविधावार्षेये देव-ताध्याये चाद्यानि वाक्यानि। 'देव सवितरोम्' इत्येतत्, 'असौ वा आदित्यः, यो ह वै जयेष्ठम्' इत्युपनिषद्। संहितोपनिषदि वंशे चाद्ये वाक्ये। चकारात्तदङ्गानि लच्चणानि यथाधिगमः॥

भा०—"सोमश्रराजानं०" ऋक् त्र्योर ऋक् मूलक साम इस प्रकार क्रम से श्रभ्यास करावे ॥ १८ ॥ धाना दिध च प्राश्नीयुरिभक्तपाभ्याम् ॥ १९ ॥

'धानावन्तम्' इति धानाः । आचम्य 'द्धिकाञ्णः' इति द्धि । चकारात् पायसमुत्तरघृतमश्रीयुः । अत्र पूर्वोह्वनियमो नास्तीत्युपदेशः ॥

भा० — वेद पारायण के पीछे "धानावन्तक्करिन्भण्म् मन्त्र का पाठ करते हुये विन दूटा फूटा हुआ यव और दिध सव लोग भन्नण करें॥ १६॥

श्वोभूते प्रायीयीरन् शिष्येभ्यः ॥ २०॥

श्वोभूते पूर्वोह्न एव स्नात्वाऽलंकुर्युः । पूर्ववदृपीणां स्नानाद्यर्चनपर्य-न्तं कृत्वा साविज्यादीनि पूर्वोक्तानि ब्र्युः त्राचार्याशिशाष्येभ्यः । बहु-वचनं पूजार्थम् ॥

भा०-प्रातःकाल पूर्वाह ही में आचार्य्य शिष्यों को पूर्ववत् पढ़ावें।। २०।।

अतुवाक्याः कुर्युः ऋगादिभिः पस्तावैश्व ॥ २१

ऋजु पादमात्रैस्साम पु प्रस्तावमात्रैस्सावित्रीसोमंराजे तु कृत्स्ने एव । चकारादनर्थार्थवाक्यमात्रैर्त्राह्मणादिपु यथाऽनुवचनीयाः शिष्याः स्तथा कुर्युराचार्याः॥

भा॰ - त्रौर ऋक् मंत्रों में से पाद २ मात्र, साम में से प्रस्ताव मात्र, त्रौर सावित्री त्रौर "सोमं राजे" सम्पूर्ण ही पढ़ावें त्रौर ब्राह्मण स्त्रादि प्रन्थों से भी शिष्यों को बतलावें ॥ २१॥

अनुगानमरहस्यानाम् ॥ २२ ॥

इतःप्रश्रृत्यारण्यानामध्ययनान्निवृत्तिरोत्सर्जनात् ।।
भा०---यहाँ से आगे आरण्यक ग्रन्थों को पढ़ना छोड़ देवे ॥२२॥
विद्युत्स्तनियत्तुवर्जम् ॥ २३ ॥

उपाकर्मप्रभृति प्रागुत्सर्जनात् प्रातस्सन्ध्यायां विद्युत्स्तनियत्त्र यदि दिवाऽनध्यायः । सायंसन्ध्यायां रात्रौ । तथाऽऽह् मनुः— प्रातुष्कृतेष्वप्रिपु तु विद्युत्स्तनितनिस्त्रने ।

यज्योतिस्यादनध्यायश्रोषं रात्री यथा दिवा ॥

यावच्छ्रम्याप्रासं रोहितादिवर्णविवेकावगतिः यावद्वावियुत्तावत् भवति तद्नध्याय इत्यापस्तम्यमतिः॥

अर्थपञ्चमान्मासान्धीत्य पौषीमुत्सर्गः ॥ २४ ॥

श्रवीः पश्चमी मासः येषां ते श्रधीपश्चममासाः श्रधीधिकचतुर इत्यर्थः । पुष्येण युक्तायां पौर्णमास्यां पूर्वोक्तमुत्सर्जनं कुर्युः । श्रधीपश्च-मान्मासानिति वचनात् प्रौष्ठपदे मासे हस्तद्वयसं वे पूर्वहस्त एखोपाक-रणप् । श्रावएयामप्युपाकरणे पौष्यामेवोत्सर्गः ॥

भा०—िकन २ दशाओं में वेदादि पाठ का अनध्याय होगा सो कहते हैं विजुली गिरने, वादल लगने, पानी वर्षने आदि मेघ सम्बन्धी उपद्रवों के अवसर में अनध्याय होगा। श्रावण या माद्रमास में वेदादि का पढ़ना आरम्भ कर पीष मास में पढ़ना बन्द होगा ओं साढ़े चार महीने तक वेदादि को पढ़कर पीष में पढ़ना बन्द रहेगा।। २४।।

तत ऊर्ध्वमभ्रानध्यायः ॥ २५ ॥

वर्षसमर्थाः मेघा यदा दृश्यन्ते तद्ाऽध्यायो न भवति ॥

भा०—इसके बाद जब मेघ वर्षने की सम्भावना हो तो स्रमध्याय रहेगा॥२४॥

विद्युत्स्तनयित्तुपृषितेषु च ॥ २६ ॥

सन्ध्यायामेतेष्वाकालिकमनध्यायः । तथाऽऽह गौतमः-'स्तनयि-त्नुवर्षविद्यं तश्च प्रादुष्कृताप्रिषु' इति । प्रषितो वर्षः । चकारसमृत्यन्त-रोक्तानध्यायसंग्रदार्थः ॥

भो०—विज्ञली मेघमाला त्रौर वृष्टि देखने पर भी श्रनध्याय रहेगा॥ २६॥

त्रिसन्निपाते त्रिसन्ध्यम् ॥ २७ ॥

प्रातस्सन्ध्यायां त्रयाणां सिन्नपाते तदहोरात्रमुत्तरं चाहरनध्यायः सायंसन्ध्यायां सा रात्रिहत्तरं चाहोरात्रम् ॥

भा०-प्रातःकाल में यदि मेघादि का उपद्रव हो तो उस दिन एक रात दिन त्रीर सायंकाल में यदि उपद्रव हो तो उस रात से लेकर ऋहोरात्र त्रनध्यांय रहेगा॥ २७॥ अष्टकाममावास्यायां चातुर्वामीकदगयने च पक्षिणीं रात्रीम् ॥ २८ ॥

माघमासे कृष्णाष्ट्रम्यष्टका । चतुर्षु मासेषु भनाः पौर्णमास्यः चातुर्मास्याः । वर्गाषु शरत्यु च याः । चकाराइ विणायने च । अष्ट्र-कायाममावास्यायां चातुर्मासीष्वेकम होरात्रमुत्तरं चाहरनध्यायः । अय-नयोस्तु दिवा चेत् संक्रमण्महरुभयतश्च रात्रिरनध्यायः । रात्रौ चेत्सा रात्रिरुभयतश्चाहनी । अत्र रात्रियहण्मष्टकादिषु पूर्वरात्रिवर्जनार्थम् । केचिदिवा संक्रमणेऽपि यद्रात्रिसन्निधौ संक्रमणं तामुभयतोऽहस्सहिता-माहः । रात्रिमहणात् ॥ २८॥

भा०-- अष्टका श्राद्ध, अमावस्या, चारों महीनों की पूर्णमासी श्रीर दक्षिणायन में भी एक अहोरात्र श्रीर एक दिन अनध्याय रहेगा।

सब्रह्मवारिणि च प्रते ॥ २९ ॥

स्त्राचार्येणोपनीते मृते तत्त्रभृति कात्रत्रयमनध्यायः। चकारा-न्मातुलादिषु च।।

भा०-श्रीर साथ पढ़ने वाले त्रश्चारी के मरने पर भी एक

पित्रणी काल अनध्याय रहेगा।। ३६॥

उल्कापाते भूमिचले ज्योतिषोश्चोपसर्ग एतेष्वाकालिकं विद्यात ॥ ३०॥

ज्योतिषोस्सूर्याचन्द्रमसोर्घह्णे । चकाराद्व्यक्तेषु निमित्तं पु विद्यादिति स्मृत्यन्तरोक्तसंमहणार्थः ॥

भा० - उल्कापात, भूकम्य और सूर्य्य और चन्द्र ग्रहण के पर दिवसीय उसी समय तक अनध्याय होगा ॥ ३० ॥

कार्ष्वं तु कठकौथुवाः ॥ ३१ ॥

श्वम्रेषु यावति वर्षे उद्कं तिष्ठति तावति वर्षे सन्ध्यायां सर्ति कठाः कौथुमाश्चानध्यायमाहुः, न वर्षमात्रे ॥ ३१ ॥

इति खादिरगृह्मसूत्रवृत्तौ तृतीय पटलम्य द्वितीयः खरडः ॥ ३ ॥ २ ॥

भा० - कठ और कौथुनी शाखा वाले जब तक गड़हे में मेव का पानी रहेगा तब तक अनध्याय मानते हैं।। ३१।।

इति खादिरगृद्धस्त्रवृत्ति के तीमरे पटल के दूसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ।। ३।२॥ श्राश्वयुर्जी रुद्राय पायमः ॥ १ ॥

आश्वयुष्यां पौर्णमास्यां 'रुद्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । चरुतन्त्रमेतन् ॥

भा० — आरिवन की ।पूर्णभासी को प्रवातक ( घी मिला दूध ) इकट्ठा कर रुद्र देवता की प्रसन्नता के लिये पायस चरु पाक करे।। १॥

मा नस्तोक इति जुहुयात् ॥ ३॥

प्रधानाहुतिम् ॥

भार श्रीर 'मानस्तोक ए" मंत्र से उस चृत की आहुति देवे ॥ २॥

पयस्यवनयेदाज्यं तत्पृषातकम् ॥ ३ ॥

समाप्य होममवनयेत्। आज्यसंयुक्तस्य पयसः पृषातकमिति नाम ॥

भा०-- आज्य मिले हुए घी को प्रवातक कहते हैं ॥ ३ ॥ तेनाभ्यागता गा उक्षेदा नो मित्रावरुऐति ॥ ४ ॥

सायमागताः ॥
भा०—सायंकात में ऋाई हुई गौ को "आनो मित्रा वरुणाह"
मंत्र पढकर सींचे ॥ ४॥

वत्सांश्च पातृभिस्सइ वासयेत् तां रात्रिम् ॥ ५ ॥

स्पष्टम् ॥ भा॰—श्रीर उस रात में बछरों के साथ गौ को रहने दे॥ ४॥

नवयज्ञे पायस ऐन्द्राग्नः ॥ ६ ॥

तत्कालपक्वैस्सस्यैस्साध्यो यज्ञो नवयज्ञः । श्रनिष्ट्वा तु नवैर्न भोक्तव्यम् । शाकादीनां न प्रतिषेधः । शास्त्रान्तरात् कालद्रव्यावगितः-शरिद पौर्णामास्याममावास्यायां वा त्रीहिभिः । वसन्ते यवैः । 'इन्द्राप्ति-भ्यां त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निर्वापः । 'इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा' इति प्रधानाहुतिः । चक्रतन्त्रमेतत् ॥

भा०-नये अन से जो यह किया जाता है उसकों नवयह

कहते हैं। नंवयज्ञ में पायस चक तब्यार कर "इन्द्राग्नीभ्यां त्वा जुब्हें निर्वपामि०" मंत्र से आहुति देवे।। ६।।

शतायुधायेति चतस्रभिराज्यं जुहुयादुपरिष्टात् ॥ ७ ॥ प्रश्नानाहुतेरुपरिष्टात् ॥

२० - अब नवानेष्टि की मुख्य यह ऐन्द्राग्न आहुति देने पर "शतायुधाय०" इत्य दि चार मंत्रों से आज्याहुति द्वारा और भी चार होम करे॥ ७॥

श्रिप्तः माश्नारिवंति च ॥ ८ ॥

अनेनाप्याज्यं जुहुयात् । अथ स्विष्टकृदादि ॥ भा॰—"अग्निः प्राश्नातु॰" मंत्र से एक आहुति देवे ॥ ५॥ तस्य शेषं प्राश्नीयुर्यातन्त् उपेताः ॥ ९॥

यज्ञवास्त्वनन्तरस्य पायसस्य । उपेता उपनीताः,स्वभृत्यास्वयं च भा०—होम में की बची हुई शेष हिव यज्ञ देखने को आए हुए परिजन निमन्त्रण से आये हुये लोगों को यथा भाग खबावे ॥ ६ ॥

उपस्तीर्यापो द्विनवस्यावद्येत् ॥ १० ॥

भोजनार्थे पात्रे॥

त्रिर्भृगुणाम् ॥ ११ ॥

पद्भावत्तिनाम्।।

श्रपां चोपरिष्टात् ॥ १२ ॥

अवत्तस्योपरि चापां निधानम्।।

भा०—होम से बचे हुए चर पर एक बार जल छिड़क कर दो बार दुकड़े रे करे। श्रौर भृगु गोत्र वाले नस चरु को तीन दुकड़े करे। श्रौर ऊपर उनके जल छिड़क देवे॥ १०। ११। १२॥

भद्रान इत्यसंखाद्य प्रगिरेत्त्रिह्नः ॥ १३ ॥

पाणिना प्राशनं, मन्त्रभ्यापि त्रिरावृत्तिः । नान्तराऽऽचमनम् । अविविश्वतंमेकवचनम् ॥

मा०- उसी प्रकार कई बार बटे हुये चरु पर भी एक बार जल

श्रिड़के। उसके पीछे चरु में से कुछ लेकर "भद्रान्नः" मंत्र पढ़कर स्वाद न लेकर निगल जावे। ऐसा तीन वार मंत्र पढ़ २ कर करे।।१३॥

एतमु त्यमिति वा यवानाम् ॥ १४ ॥

श्रयं वा यवानां प्राशनमन्त्रः पूर्वी वा ॥

भा०—श्रौर नूतन यव यज्ञ में "एत मुख्यं मधुना०" मंत्र का प्रयोग करे॥ १४॥

अमोसीति ग्रुख्यान् पाणानिभम्रशेत् ॥ १५ ॥

श्राचम्य चत्तुषी नासिके श्रोत्रे चामिमृशेत्। श्रथ शिष्ट्रसुद्गुद्वास्य त्रह्मणे दत्वा दिचणां दद्यात्।।

भा० — उसके पीछे 'अमोसिप्राणं०'' मंत्र को पढ़कर ललाट से खाड़ी तक और ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश और कान की जड़ से पैर तक अच्छे प्रकार धोवे और वाकी को उत्तर और ब्रिड्ककर ब्राह्मण को देवे।।१॥।

त्राप्रहायण कर्म श्रावणेन व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

मार्गशीष्यीं पौर्णमास्यां भर्जनादिप्राशनान्तं पूर्वाहे क्रयात् उपवसथ्येऽहिन ॥

भा०—श्रावण मास की पूर्णमासी को बिल हरण विषय में जो २ कहां गया है इस अगहन मास की पूर्णिमा के बिलहरण में भी उन्हों २ नियमों का पालन करे ॥ १६॥

नमः पृथिव्या इति न जपेत् ॥ १.७ ॥

सन्त्रत्रयस्य प्रतिषेधः ॥

भा०—श्रावण मास में जो विल हरण आरम्भ हुआ है। उसमें "नमः पृथिव्यैव" मंत्र का व्यवहार करने की विधि है। इस अगहन मास की विल हरण में उसकी आवश्यकता नहीं, यही इसमें विशेषता है।। १७॥

प्रदोषे पायसस्य जुहुयात् प्रयमेति ॥ १८ ॥

तिसम्भेव दिने राज्यामाद्ये यामे 'हव्यवाहाय स्वा जुष्ट निर्व-पामि' इति निर्वापः । सर्वत्र केवलमन्त्रनिर्देशे तूष्णीं निर्वाप इति केचित् । मन्त्रेण प्रधानाहुतिः । चहतन्त्रमेतत् ॥ भा०-प्रदोष समय (रात का आरम्म) समन्त्यायन्ति० ' मंत्र को पढ़ते हुये "पायस चरु" को पकावे ॥ १८॥

न्यश्चौ पाणी कृत्वा प्रतिक्षत्र इति जपेत् ॥ १९ ॥

होमं समाप्य जपेत् भूसिगताववास्त्री पाणी कृत्वा ॥

भा० — त्राप्ति के पश्चात् भाग में कुश के ऊपर दोनों हाथ नीचे रक्खकर "प्रतिचत्रे०" त्रादि तीन व्याहृति मंत्रों का जप करे ॥ १६॥

पश्चाद्गनेः स्वस्तरमुद्गग्रैस्तृर्णेश्द्वमवणमास्तीर्य तस्मिना-

स्तरणे गृहपतिरास्ते ॥ २० ॥

स्वस्तरमिति कर्मनाम।।

अनुपूर्विमतरे ॥ २१ ॥

सर्वे भृत्याः क्रमेणोत्तरतः स्वरतर एवासते॥

भा०—इस के पश्चात् अग्नि के पश्चिम उत्तराश आदि कुशासन पर बैठने के लिये आसन बनवाने में यत्नवात् होवे । यह स्थान उत्तर दिशा में गहरा होगा । उमके अपर अच्छिल (दूटा नहीं ) आस्तरण आदि विद्वाकर सब से दिल्ला और घर का मालिक बैठे । उसके बायें कम से उयेष्ठ अनुसार भाई आदि बैठे । अर्थात् मालिक बाँथी और प्रथम बड़े बैठे उसके पश्चात् छोटे इसी कम से और भी बैठें ॥२०-२१॥

अनन्तरा भार्या पुत्राश्च ॥ २२ ॥

भार्याऽनन्तरं पुत्राः चकारात् पुत्रानन्तरमितरे ॥

भा॰—श्रौर उसके पश्चात् श्रपने वर्ण की भार्या श्रादि भी उक्त प्रकार बड़े छोटे क्रम से बैठे॥ २२॥

न्यश्रौ पाणी कृत्वा स्योनेति गृहपतिर्जपेत् ॥ २३ ॥ भूमिगतौ कृत्वा ॥

भाव-सब के ठीक २ बैठ जाने पर घर का मालिक स्वस्त्ययन प्रारम्भ करे। श्रीर दोनों हाथों को नीचे कर ''स्योनापृथिविनोभवाव' मंत्र को पढ़े॥ २३॥

समाप्तायां दंक्षिणैः पार्श्वेस्संत्रिशेयुह्मिस्त्रिरभ्यात्ममाद्वत्य।।२४

'स्योना' इत्यृचि समाप्तायां प्राक्शिरसस्संविशेयुः॥
स्वस्त्ययनानि कुर्युः ॥ २५ ॥
आशीर्वचनानि ॥
ततो यथार्थं स्यात् ॥ २६ ॥

तत एव यथार्थं न पूर्विमिति । 'श्राप्रहायण्म्' इत्यारभ्य एक एवासौ प्रयोग इत्यर्थः ॥

भा०—पाठ समाप्त होने पर सब को प्रदक्षिणा कर अग्नि और परिजन इनके बीच होकर अपनी जगह आ बैठे। इसी प्रकार तीन वार प्रदक्षिणा कर "वामरेव्यादि" "स्वस्त्ययन" साम गान के अन्त में पूर्वोक्त रीति से क्रियाशेष करे। और क्रिया की समाप्ति पर आचमन कर जहां चाहे जावे या अपने प्रयोजनानुसार कार्य करे॥ २४। २४। २६॥

जध्रवमाग्रहायएयास्तिस्रस्तामिस्राष्ट्रम्योऽष्टका इत्याचक्षते ॥ अपरपत्ताष्ट्रम्यः॥

भाय-अप्रहण मास की पूर्थिमा के पीछे कृष्णपत्त की तीन अष्टमी को तीन अष्टकायें होती हैं इनको आचार्य्य लोग अपूपाएक कहते हैं अर्थात् ये अष्टकायें पूजा द्वारा की जाती हैं ॥ २७॥

तासु स्थालीपाकाः ॥ २८ ॥

एकस्यामेकः ॥

भा०—इसके पहिले स्थालीपाक प्रकरण में जिस प्रकार कहा गया हैं उसी प्रकार तण्डुल आदि से चरु पाक करे॥ २८॥

अष्टौ चापूषाः प्रयमायाम् ॥ २९ ॥

स्पष्टम् ॥ भा॰—श्रौर मट्टी की एक बड़ी कराही में त्राठ पूत्रा पकावे । पुत्रा को इस भांति बनावे जिससे वह दूटे नहीं ॥ २६॥

तानपरिवर्तयन् कपाले अपयेत् ॥ ३० ॥
'श्रष्टकायै त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति निरुप्य निरुपार्धं स्थालीः

पाकचरुस्थाल्यां निधायापरं चार्धमष्टावपूपात् कृत्वैकस्मिन् कपाले युगपच्छ्रपयेन्।।

उत्तमायां शाकमन्त्राहार्ये ॥ ३१ ॥

उपदंशार्थं त्राह्मण्भोजने दद्यात्।

भ.०—एक ही चरु स्थाली में अलग २ आठ पुत्रा बनावे और शांक भी बनावे। और पुत्रा और शांक ब्राह्मण को भोजन करावे ।। ३०। ३१।।

अष्टकार्यं स्वाहेति जुहुयात्॥ ३२॥

प्रधानाहुतिम् । चरुतन्त्रमेतत् । चरोरपूपेभ्यश्च किञ्चित्किचिद्।-दाय स्विष्टकृदर्थं संहतमेकैकमवदानम् । उत्तमायां चरुरेव हवि । समा-नमितरत् । मध्यमायां तु विशेषं वच्यति ॥

इति खादिरगृद्धसूत्रशृत्तौ नृतीयस्य पटलस्य नृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥ ३ ॥

भा०-पूर्वोक्त स्थालीपाक के नियम से उस चरु और पूए आदि से कुछ र अंश काटकर इस काटे अंश को 'अब्टकायै स्वाहा'' मंत्र से अग्नि में डाले ॥ ३२॥

इति खादिरगृह्मसूत्र वृत्ति के तीसरे पटल के तीसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ।। ३।३॥

मध्यमायां गौः ॥ १ ॥

स्थालीपाकेन समुचयः। चरुश्रपणवर्जमाज्यसंस्कारान्तं कुर्यात्॥ तत स्राह—

भा--पौप मास को पूर्णिमा के पीछे अष्टमी तिथिको गोमांस द्वारा मांसाष्टका करे ॥ १॥

तां पुरस्ताद्गनेः प्रत्यङ्गुखीमवस्याप्य ज्ञहयाद्यत्पश्च

स्पष्टम् ॥

भा० — सिन्ध वेला (रात ऋौर दिन का संयोग समय) कं कुछ पहिले ऋषि के पूर्व भाग में उस गौ को लाकर रक्खें। पीछें सिन्ध बेला होने पर "यत्परात्र प्रध्यायत०" मंत्र से घी की आहुति देवे और कार्य का आरम्भ करे॥ २॥

हुत्या चातुपन्त्रयेतातु त्वेति ॥ ३ ॥

व्याहृतिभिश्च हुत्वा पशुमनुमन्त्रयेत ॥

भा०—श्रीर कार्य के श्रारम्म सूचक पूर्वीक श्राहृति देने पर इस समय यव मिला जल, पवित्र, जुर, शाखा, विशाखा, बर्हि:, इध्म श्राज्य, दो समिधा, श्रीर स्तुव ये सब मी श्रावश्यकतानुसार श्रपने पास ठीक रक बे। "श्रनुत्वा," मंत्र पढ़ने हुए गौ को मारने के लियें निमन्त्रण देवे ॥ ३॥

यत्रमतीभिगद्भिः मोक्षेद्घ्यकायै त्वा जुष्टं मोक्षामीति ॥४॥ स्पष्टम् ॥

भावी "अष्टका देवता की प्रीति के लिये प्रीति पूर्वक सेवनीय तुम्हें धोता हूँ०' मंत्र पढ़कर उस वध्य गौ को यव से भीगे जल से धोवे।। छ।।

प्रोक्ष्योत्सुकेन परिहृत्य प्रोक्षणीः पाययेत् ॥ ५ ॥
तूष्णीं प्रोत्त्य गृह्याग्नेरुत्सुकेन पशुं प्रदक्षिणं परिवार्य प्रोत्त्रणीशेर्य पाययेत्पश्चम् । उत्सुकमग्नावितस्त्रजेत् ॥

भा०—"परिवाजपति०" मंत्र को पढ़कर एक मुट्टी खर जला कर जलते खर से उस गौ की प्रदक्षिणा करे। श्रौर गौ को एक पात्र में जल पीने को देवे॥ ४॥

उदङ्ङुत्सृष्य प्रत्यिक्षरसीमुद्विपादीं संज्ञपयेत्॥ शंमिता॥

भा०— अनन्तर शमिता उस गौ को अग्नि के उत्तर लाकर काट डाले। यदि देव कर्म के लिये गौ मारी जावे तो पशु का मस्तक पूर्व दिशा में रक्खे और चारों पैर उत्तर की ओर रक्खे। और यदि पितृ कार्य के लिये गौबध हो तो पशु का मस्तक दिल्ला दिशा में और उसके पैर सब पश्चिम दिशा की और रक्खे। ६॥ संज्ञप्तायां जुहुयाचत्पशुनिति ॥ ७ ॥

गृहपतिः ॥

भार-गौ मारे जाने पर घर का मालि ह "यन पशु०" मंत्र को पहकर आज्य से होम करे॥ ७॥

तस्याः पत्नी स्रोतांिम पक्षालयेत् ॥ ८ ॥

तत्याः स्नेतांति चतुरश्रोत्रन।सास्यपायूपस्थानि पत्नी प्रचालयेत्। भाट-श्रीर उस समय यजमान की स्त्री जल से उस बटे हुये शिर वाली गौ के नेत्र श्रादि इन्द्रिय श्रादि को श्रच्छे प्रकार धोवे। जैसे माथे में, नेत्रादि सात, चार स्तन, नाभि, कमर, गुह्य देश ये १४ स्थान हैं॥ =॥

पित्रत्रे अन्तर्धायोत्कृत्य वपामुद्धारयेत् ॥ ९ ॥

भा० — तव शिमता नाभि के पास पवित्रद्वय से छिपाकर लोमानुसरण क्रम से चुर के नीचे की श्रोर जाने वाली चालन से काट कर उसमें से वपा को निकाले ।। ६।।

यज्ञियस्य दृक्षस्य विशाखाशाखाभ्यां परिगृह्याग्नौ श्रय-येत् ॥ १० ॥

गृहपतिः॥

भा०—श्रौर निकाली हुई वपा को मालिक शाखा, विशाखा, नामक पलाश की लकड़ी का बना हुश्रा ढक्कन के श्राचार पर रक्ख़ के जल से सामान्य रूप से धोकर श्रिप्त में सिद्ध करे।। १०॥

प्रस्तायां विशसेत् ॥ ११ ॥

यदा श्रवणाद्वपायाः प्रस्नवेद्वारि तिस्मन् काले शमिता पशुं विशसेत्॥

भा०-इयर उस गौ के नाभि के पास से काटकर मेट निकाल इस गौ के चमड़ा निकालने की आज्ञा करे॥ ११॥

उक्तमुपस्तरणाभिघाग्णं यथा स्त्रिष्टकृत: ॥ १२ ॥

म्पष्टम् ॥ 'संकृदुपस्तीर्य' इत्यादि यथोक्तं तथाऽत्रापि हविस्स्थाने कृत्सनां वपाम् ॥ अष्टकायै स्वाहेति जुहुयात् ॥ १३ ॥ स्पष्टम् ॥

भा०—अनन्तर उस अग्नि में पकी वपा जो ठंड के कारण जम जायगी उसको "स्थालीपाक" की रीति से या स्विष्टकृत् की रीति से चाकू से फाटकर उत्तमें से लेकर "अष्टकाये खाहा०" मंत्र से है.म करे॥ १२। १३॥

सर्वाङ्गेभ्योज्वदानान्युद्धारयेत्॥ १४ ॥

हृदयजिह्वावचोयकुद्रक्यद्वितयसःयवाहुपार्श्वद्वयद्चिणाश्रोणि-गुदेभ्य एकादशाङ्गेभ्य श्राहुतिमात्रमुद्धारयेच्छमिता।।

न सच्यात्सक्थनः ॥ न क्रोम्नः ॥ १५-१६ ॥ पूर्वस्यान्वष्टक्यार्थत्वादुत्तरस्याह्व्यत्वात् ॥ सच्यं सिक्थ निधाय ॥ १७ ॥

श्चन्वष्टक्यार्थम् ॥

भा० —वाम सक्थि ( ऊरु ) और क्रोम (पित्त कोष ) को छोड़कर सब अङ्गों से खण्ड २ करके मांस प्रह्ण करे। वाम सक्सिंध समस्त ही अन्वष्टका कार्य्य में व्यवहार के लिये रक्खे ॥१४॥१४ १६:१७॥

पृथक मेक्षणाभ्यामवदानानि स्थालीपाकं च अपित्वा ॥ अवदानानां कुम्भ्यां अपग्रं, चरोस्तृष्णीं निर्वापः, अपित्वाऽव-दानानि स्थालीपाकं चामिघार्योद्गुद्धास्य प्रत्यभिषार्य बर्हिषि कंसं सच-शाखाश्चैकादश साद्येत्॥ तत आह्—

भा०—उदी एक अग्नि में "श्रोहन चरुं श्रीर मांस चरुं ये दोनों चरु पकावे। परन्तु दोनों चरु में भिन्न २ चलीने से चलावे एक ही से नहीं। इन दोनों चरुओं के श्रच्छे प्रकार पक जाने पर घी का ढार दे श्रिम के उत्पर भाग में उतार लेवे श्रीर पुनः उसमें घी का ढार देवे॥ १८॥

> कंसे रसं प्रस्नाव्य ॥ १९ ॥ अवदानरसम्॥

ष्ठभशाखास्त्रवदानानि कृत्वा ॥ २० ॥

हृदयाधेकादशाङ्गानि निधाय ॥

एकैकस्मात् कंसेऽवद्येत् ॥ २१ ॥

कंसस्थे रसे प्रत्येकं मध्यात्पुरस्ताच्च ॥

स्थालीपाकाच्च ॥ २२ ॥

स्पष्टम् ॥ श्रथ परिपेकाद्याज्यभागान्तम् । नतु 'हुत्वा चातुमन्त्र-येत' इति व्याहृतिहोमानां विद्यमानत्वादत्राज्यभागौ न स्तः । श्रन्य-विषयत्वात्, प्रपदानन्तरं यत्र व्याहृतिहोमस्तत्र तयोः प्रतिषेधः ॥ तत श्राह्—

भा०—मांस के यूष को एक कांसे के वर्तन में डार रक्खे और मांस आदिक को एक पत्थर को कुरडी (जिसका डक्कन पाकर शाखा निर्मित हो) में रक्खे और पुनः उस भाग में से थोड़ा स्थालीपाक के नियम से काट लेवे और उसको स्विष्टकृत् भागार्थ दूसरे कांसे के वर्तन में रक्ख छोड़े। ओदन की हाँडी से वेल की बराबर चरु लेकर (पत्थर की कुरडी में रक्खा) मांस खरड के साथ (काँसे के पात्र में रक्खे हुये) यूष को मिलावे। अर्थात् उस यूप के पात्र में यूष के बीच में रक्खे ॥ १६। २०। २१। २२॥

चतुर्रहीमष्टगृहीतं वाष्त्र जुहुयादग्राविति ॥ २३ ॥

द्वांविंशतिः पश्ववदानानि, तेषां चत्वार्यष्टौ वा चर्ववदानिम-श्राणि गृहीत्वा जुहुयात् । श्रत्रेत्युपस्तरणाभिघारणप्रतिपेधार्थं, श्रत्रैव गृहीत्वा जुहुयान्नान्यत इति ॥

भाव-पूर्वोंक रीति से चार वार प्रहण किया हुआ आज्य ले कर "अग्नावग्निः" इत्याद्मि मंत्रों में से "अग्नावग्निः" मंत्र पढ़कर हवन करे।। २३॥

कंसात्पराभिद्धिभ्यांद्वाभ्यामेकैकामाहुतिम् ॥ २४ ॥

कंसादेव गृहीत्वा पराभि ऋग्भिः 'त्रौल्खलाः' इत्यादिभिष्य-द्भिद्धीभ्यामेकैकामाहुतिं द्वाभ्यां पश्ववदानाभ्यां चर्ववदानमिश्राभ्यां जुहुयात्।। सौविष्टकृतीयष्टम्या ॥ २५ ॥

कंसे यच्छिडटं तेन 'श्रन्वियं नः' इति स्विष्टकृत्स्थानापन्न' जुहु-यात् । श्रतो न स्विष्टकृद्न्तरम् । श्रथोपरिष्टाद्धोमादि ॥

मा०—पूर्वोंक विल्व की बराबर जो श्रोदन चर मांस के साथ मिलाकर यूष में रक्ला गथाहै। उसमें से एक तिहाई लेकर दूसरे और तीसरे मंत्रों से एक श्राहुति देवे उसके तीसरी श्राहुति के अन्त में "स्वाहा" राब्द का प्रयोग करे। श्रपर दो तिहाई भी चौथे और प्रस्नम मंत्रों से एवं छठे और सातवें मंत्र से इसी नियम से श्रर्थात् शेष मंत्र के अन्त में "स्वाहा०" जोड़कर यथाक्रम दो श्राहुति देवे। सबके श्रन्त में श्राठवां मंत्र पढ़कर स्वष्टकृत् याग के लिये (श्रलग कांसे के पात्र में रखा) मांस खएड श्रादि होम करे॥ २४॥ २४॥

वह वपामिति पित्रये वपाहोमः ॥ २६ ॥

पितृदैवत्ये कर्माणि॥

जातवेद इति दैवत्ये ॥ २७ ॥

वपाहोमः॥

तदादेशमनाज्ञाते ॥ २८ ॥

अनिर्दिष्टोभयभावे कर्मनाम्नैव।।

ययाञ्चकाया इति ॥ २९॥

अत्रैवाभिहितम्॥

पशुरेव पशोर्द्शिणा ॥ ३०॥

एवकार उपालव्यतुल्यार्थः॥

स्यालीपाकस्य पूर्णपात्रम् ॥ ३१ ॥

यथोत्साहनिवृत्त्यर्थम् । चरुतन्त्रप्रकृतिरयं होमः ॥

इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ तृतीयस्य पटलस्य

चतुर्थः खरडः ॥ ३ । ४ ॥

भावित जित्र स्थान में पितृगण के लिये पशु हनन करे, उस स्थान में "वह वपांव" इत्यादि मंत्र से वपा होम करे स्थीर जहां किन्हीं देजता के लिये पशु हतन किया जाय, वहां "ज,तवेदो वपयाव"

I OP

इत्यादि मत्र से वपा होम करे। जहां कर्तन्य कार्य के देवता के निश्चय में सन्देह हो (कि यहां कौन देवता होनी चाहिये) ऐसे स्थान के लिये विशेष मंत्र कहा जाता है। ऐसे स्थानों में जो मंत्र कहा जावे, इसी मंत्र से बपा होम करे। जिस प्रकार अष्टका कार्य में "अष्टकायें खाहा॰" मंत्र से बपा होम में आहुति होगी। अन्य कार्य सब स्थाली पाक के नियम से होंगे। पशुयाग में दिच्या पशु ही दिया जायेगा, और स्थालीपाक में पूर्ण पात्र दिच्या में दिया जायेगा॥ ६६। ६७। २६। २६। ३०। ११॥

> इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्ति के तीसरे पटल के चौथे खरड का भाषानुवाद समाप्त हुआ ॥ ३ । ४ ॥

#### नवमीं दशमीं वाऽन्वष्टक्यम् ॥ १ ॥

द्वितीयाऽत्यन्तसंयोगार्था । पूर्वाह्वःयतिरेकार्था । तेनानादते च पूर्वाह्वे पित्र्यत्वाद्पराह्वनियमः । पित्र्यत्वं च पिएडप्रदानप्रधानत्वात् । प्राचीनावीती कुर्यात् । अत्रापि होमे तद्क्षेषु च यज्ञोपवीत्येव ! मध्य-न्दिनादूर्ध्वमपराह्वः अहः पद्धना विभन्य चतुर्थो वा भागः अह्वस्तृतीयो वा भाग इति केचित् । अष्टकामनु क्रियत इत्यन्वष्टक्यं कर्म, एतच प्रत्य-ष्टकमनन्तरं कर्तव्यम् ॥

भा० - श्रष्टका कार्य के दूसरे दिन या उसके तीसरे दिन "अ-न्वष्टका" कार्य करे॥ १॥

दक्षिणपूर्वे भागे परिवार्य तत्रोत्तगर्धे मियत्वाडियं प्रणयेत् ।२

गृहस्य दिच्चणपूर्वभागे, गृह्याग्रनेरिति केचित् । प्रोच्चणान्तं कृत्वा प्रणयेत् निद्ध्यादित्यर्थः । श्रस्य श्रपणार्थत्वात् प्राचीनावीती ॥

भा०—रहने के घर से अग्नि कोण में अष्टम भाग स्थान छेक कर दिवाण पूर्व दिशा में विस्तृत इस अग्नि कोणाभिमुख रक्खा द्रव्यादि से कार्य सिद्र करने के लिये रुकावट न हो ऐसा उत्तम एक मण्डप बनावे। इसके उत्तराई में अरिण द्वारा अग्नि उत्पन्न कर नूतन अग्नि का आधान करे॥ २॥

# सक्रद्रगृहीतान् त्रीहीन् सकृत् फलीकृतान् मसन्यग्रदायुवं अपयेत् ॥ ३ ॥

सकृद्गृहीतान् सकृत्म् लीकृतानिति सिद्धवद्ययपदेशात्र स्वयं कर्तृत्विनयमः । भूतकालिनदेशाच्च नापराह्वनियमः । सकृदेव तूष्णां स्थाल्यां निरुष्य सकृत्प्रचाल्य मेच्चणेन प्रसट्यमप्रद्विणमुदायुवं अपयेत् मथितेऽम्रौ गृह्ये वा ॥

# अमुष्पाच्च सक्थनो मांसिमिति ॥ ४ ॥

अन्वष्टक्यार्थं निहितात् सव्यसक्थनो मांसं भोजनार्थवच्छकलीकृत्य स्थाल्यन्तरं मेज्ञ्णान्तरेणोदायुवं अपयेत् । इतीति चेद्र्ये । सिव्य चोद्वचते तदेवम् । प्रथमोत्तमयोस्त्वष्टकयोरन्वष्टक्ये स्थालीपाक एवेत्य-परं मतम्-'अष्टकार्ये स्वाहेति जुहुयात्' इति तिस्चृष्वप्यष्टकास्वविशेषण् वचनात् मध्यमायामि पश्चसंभवे केवलस्थालीपाकहोमोऽप्यनुज्ञात एवेति तस्मिन् पन्नेऽन्वष्टक्येऽपि स्थालीपाकअपण्मेव ॥

भा०—अग्नि के पश्चिम भाग में एक हो बार कई एक मुट्टी धान खेकर दोनों हाथों से मृसल पकड़ कर धान कूटे। पूर्वोक्त प्रकार कूटने से धान्य आदि में जब भूसी न रहे तब उसे सूप से फटक कर उस भूसी आदि को उड़ा देवे। इधर उस पूर्व रिचत वाम ऊरु से मांस पेशी आदि काटकर नये वर्तन में खएड २ कर काटे इस प्रकार खएड २ करे जिसमें घी के ढार देने से वह पिएडाकार वन जाये। एक ही अग्नि पर 'ओदन चर' और 'मांस चरु' को भिन्न २ रक्खे हुये चलौने से बाई' ओर से चलावे और ऊपर को चलौना से उठा २ कर रखकर देखता हुआ पकावे॥ ३।४॥

दक्षिणोद्वास्य न प्रत्यभिघारयेत् ॥ ५ ॥ मांसं चरुं च शृतमभिघार्य ॥ माः चरुं च शृतमभिघार्य ॥ माः चरुं च दोनों चरु के अच्छे प्रकार पक जाने पर धी का ढार देवे श्रीर श्रिप्त के दिलिए। भाग में उतारे, परन्तु उसमें पूर्ववत् फिर घी का ढार देवे ॥ ४॥

परचादग्नेर्दक्षिणतस्तिस्रः कर्ष्ः खन्याच्चतुरङ्गुलमधस्तिर्यक्। ६

पश्चाद्ग्नेरुपिवष्ट आत्मनो द्त्तिणतो द्त्तिणापवर्गाः कर्षः ख-न्यात् श्रपणात् पूर्वमेवस्मिन् देश उपवेशने सिद्धे पश्चाद्ग्नेरिति वचनं वद्यमाणं सर्वमस्मिन्नेव देश उपविश्य कुर्योदित्येवमर्थम् ॥

भा०—उस मण्डप के दक्षिण भाग में तीन गड़हा खुद्बावे। इन गड़हों की लम्बाई प्रादेशमात्र, चौथाई अंगुल और चार ही अंगुल गहराई भी होगी।। ६॥

तासां पुरस्ताद्धिं प्रखयेत् ।।७॥

मध्यमकर्ष्वाः पुरस्तादृजुदेशे द्विपदमात्रं स्वस्तरदेशमतीत्य तत्रो-पत्तेपनादि प्रोज्ञणान्तं कृत्वा मथितं सर्वं निद्ध्यात् यञ्जोपवीती सर्वत्र । यदा वा प्राचीनावीती भृत्वा यज्ञोपवीती भवति तदाऽप उपस्पृशेत् ॥

भा॰ - पहिले गड़ हे के सामने लच्च (चिन्ह) पूर्वक अग्नि प्रणयन करे और इन दो लच्च णों से अग्नि लावे और उसको गड़हों के निकट दूसरे वगल में रक्खे ॥ ७॥

स्तृ खुयात् ॥ ८॥

स्तरगान्तं यज्ञोपवीती सुर्यात्। नात्र ब्रह्मा । अत्र पश्चात् स्तरग्रपन्ः॥

कर्ष्य ॥ ९ ॥

कर्ष्णामुपरि द्विणाग्नेः प्राचीनीवीती छादयेत् न प्रतिकर्षु दर्भमेदः ॥

भा॰-कुछ जड़ काटी हुई कुश सुट्ठी एक ही वार में अग्नि के चारों ओर विद्या देवे और पूर्वादि क्रम से उस गड़हे में भी वही कुश सुट्ठी विद्यावे॥ ८॥ १॥

पश्चादग्ने: स्वस्तरं दक्षिणाग्रौस्तृर्णौर्दक्षिणापवणमास्तीर्य त्रसीम्रुपनिद्ध्यात् ॥१०॥ स्वस्तरमिति कर्मनाम । ब्रसी कूर्मफलकं, कटमिति केचित् स्व-

भा०-इन तीनों गड़हों के पश्चिम भाग में दिल्लाम कई एक कुश से दिल्ला प्रवण स्वरूप स्वस्तर विद्यावे और उसी स्थान में वृसी नाम काठ का आसन रक्खे ॥ १०॥

तिमन्निकैकमाहरेत् ॥ ११॥

तस्मिन् व्रसीसंज्ञके उदक रूणांनि त्रीणि पात्राणि तिस्रो दर्भपि-ञ्जूलीश्चरुमञ्जनं तैलं गन्धं सूत्रतन्तूं श्चैकैकशः क्रमशो निद्ध्यात् । एता-न्येव प्राचीनवीती दर्भोपवेशनादि प्रपदान्तं क्रशीत्। वर्हिषि सादनकाले कंसं च सादयेत् ॥

भा॰-उस वृषी नामक काष्टासन पर जल से भरे हुये जलपात्र तीन, कुश की ३ पिञ्जुली, चरु, ऋक्षन तेल, गन्ध, सूत्र, को एक २ कर रक्खे। इन सबको प्राचीनात्रीती करके ऋौर फिर यज्ञोपवीती होकर दर्भोपवेशनादि से लेकर प्रपद तक की सारी क्रियाओं को करे जब बर्हि कुश को रक्खे उस समय कांसे के पात्र को भी रक्खे ॥११॥

कंसे समनदाय मेश्रणेनोपघातं जुहुयात् स्वाहा सोमाय पितृमते स्त्राहाञ्चये कब्यवाहनायेति ॥ १२ ॥

चरुं मांसं च सहावादाय। यदि मांसं विद्यते मेच्चणेन। स्रुवजु-ह्योर्निवृत्तिः प्रधानहोमयोः।नात्रोपस्तरणाभिमघारणे। उपघातशब्दः पूर्व व्याहृतिहोमार्थः। त्रत एव नाज्यभागस्विष्टकृतः। कृत्सनमन्त्रोचारण-मन्ते स्वाहाकारनिवृत्तये। त्रथ गानान्तं समापयेत्। त्रथ ऊर्ध्वं प्राची-नावीती॥

भा०-जब तीनों ऋत्विग् गए एक वाक्य से 'करो' ऐसा कहें इस पर यज्ञमान कांसे के वर्तन में मांस चरु और ओहन चरुको एकत्र लेकर, उसमें से थोड़ा सा द्वीं द्वारा लेकर उपघात होम करे। उनमें से "स्वाहा सोमाय पितृमते॰" मन्त्र से पहिली आहुति देवे। और "स्वाहाम्रये कव्यवाहनाय॰" मन्त्र से दूसरी आहुति देवे॥ १२॥

सब्येनोल्युकं दक्षिणतः कर्षुषु निद्ध्यादपहता इति ।१३।

सन्येन हस्तेन कर्षः प्रज्वालय तासां दिस्यातो निद्ध्यादुल्मुकं यथाऽऽसमाप्तेर्नानुगच्छेत् 'अस्मात्' इति मन्त्रान्तः ॥

भा०-त्राम इाथ में जलती आग लेकर दिहने हाथ में रख उस कर्षू आदि के बीच में रेखापात के अगले भाग में 'ये रूपाणिंं क्यादि मन्त्र से स्थापन करे। और वाँयें हाथ में स्वस्तर से एक दर्भ भिञ्जुली लेकर दिहने हाथमें लेते हुये उसके द्वारा "अपहता असुग ंं मन्त्र से उन तीन कर्ष् से दिश्लण मुंह रेखा करे।। १३॥

पूर्वस्यां कर्षां वितुः ॥ १४ ॥

प्रथमखातायां वद्त्यमागं पित्र्ये यस्क्रस्यं तत्कुर्यात्॥

भाव-बाँयें हाथ से कर्षू के पास रक्खे हुये जल पात्र को लेकर दिने हाथ की खंगूठे की जड़ से जल ढारकर, उस जल को पिता का नाम लेकर "असी अवनेनिच्त्रव्" इत्यादि मन्त्र पढ़कर पहिले से रक्खे हुये कर्ष् के ऊपर दर्भ में आहून अपने पिता को प्राप्त कराये। इसीका नाम "निनयंन" है।। १४॥

मध्यमायां पितामहस्योत्तमायां प्रिपतामहस्य ॥ १५ ॥ वत्त्यमाणं सर्वे पितृतीथेंन दित्तणापवर्गः क्रमेण पितृपितामह-प्रिपतामहानुहिश्य दित्तणेन पाणिना कुर्यात्। 'एत पितरः' इति पित्रा-दीनावाह्येत्, मन्त्रलिङ्गात् ॥

भा०—पितासह खौर प्रिपतासह के उद्देश्य से भी इसी प्रकार निनयन करें। परन्तु प्रति बार जल से हाथ थो लिया करें। ऋथान् पितृ निनयन के पीछे हाथ धोकर पितासह का निनयन करें फिर हाथ धोकर पितासह के लिये निनयन करें॥ १५॥

उदपात्राएयपमलिव कर्षृषु निनयेदेकैकस्य नामोक्त्वाऽ-साववनेनिङ्क्ष्य ये चात्र त्याऽतुयांश्च त्वमतु तस्मैते स्वधेति।१६

अपसत्तिवि पितृतीर्थेन । प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा पितृतीर्थम् । "विष्णुशर्मन् पितः अवनेनिङ्द्व'' इतिवत् पित्रादीनां निर्देशः । यदि नामानि न विद्यान् तदा पितःपितामह् प्रपितामहेन्येव ब्रुयान् । पुत्रिका पुत्रस्तु मात्रे म।तामहाय तित्पत्रे च द्द्यात् । श्रथ वा मातामहाय तित्तित्रे तित्पत्रे च द्द्यात् । यदि जनियतुः पुत्रान्तरं न विद्यते द्वौ द्वावे-करिमन् पिर्येडे निर्दिशेत् पुत्रिकापुत्रः, तथा दत्तपुत्रोऽपि जनियतुः पुत्रा-न्तराभावे । एवमन्योपि यो द्वयोः पुत्रस्यात् ॥

तथैं विष्डाचिधाय जपेदत्र वितरो माद्यध्वं यथाभागः माद्यपायध्विति ॥ १७ ॥

कंसाह हीत्वा। 'अवनेनिङ्द्व' इत्यस्य स्थाने 'अङ्द्व' इत्यृहः॥
भा॰—पूर्व गृहीत कांसे के पात्र में मिला हुआ चरु, द्वीं से
काटकर तीन भाग करे और एक २ कर कम से (बीच २ में हाथ धो
लिया करें) कुश के ऊपर अपने पिता का नाम लेकर "असावेषः
पिएडः॰'' मंत्र से यथाक्रम तीन पिएड दान करें॥ यदि पिता का
नाम स्मरण न हो तो पहिला पिएड पृथिवी-स्थाधी पितृगण के लिये
दूसरा पिएड अन्तरित्त स्थायी पितृगण के निमित्त और तीसरा पिंड
युलोकस्थ पितृगण के निमित्त उन्हीं कर्ष्यों के बीच पूर्वोक्तानुसार
स्थापित करें॥ उन्हीं तीन गड़हों में पूर्वोक्त शित से स्थापन करके
यजमान एक स्थान में बैठकर "अत्र पितरः०" यह मंत्र पढ़े॥१६-१७॥

उक्त्रोदङ्ङावर्तेत सन्यं वाहुमुपसंहृत्य प्रसन्यपाष्ट्रत्य।।१८ न्याहृतिपूर्वां सावित्रीं तस्यां चैव गायत्रं यद्वा 'उ विश्वतिः' इत्यादीनि भित्रयाणि सामान्युक्त्वा सन्यं वाहुमुपसंहृत्य दिन्न्णां बाहुं प्रसार्य प्रसन्यमावृत्योदङ्मुखः स्यात् ॥ १८ ॥

भा०—व्याहृति पूर्वंक सावित्री को और उस में भी गायत्री मंत्र को या ''ड विश्यतिः' इत्यादि पित्र्य साम मंत्रों को कहकर बाम हाथ को समीट कर और दिहने हाथ को पसार कर गड़ हे आदि की परिक्रमा करके उत्तर मुंह बैठे॥ १८॥

जपताम्य कल्याण ध्यायन्नभिपर्यावर्तमानो जपेत् अमी मदन्त पितरो यथाभागमाद्यषायिषतेति ॥ १९ ॥

यथाशक्ति निरुच्छवास स्रासीन उच्छ्वास्य यदास्मनोऽभिक्षपितं १७

मेऽस्विति ध्यायन् जपेत्। अभिलिपितं तृप्ताः पितरः प्रयच्छन्तीति ह

भा० —यथाशक्ति श्वास को रोक कर अपने अभिलिषत कामना का ध्यान करता हुआ "अभी मदन्त पितरो यथाभागमा हु-षायित्रतः" मंत्र का जप करे (कि हे पितर! हमारी कामनायें पूरी करें)॥ १६॥

तिस्रो दर्भापञ्जू नीरञ्जने निघृष्य कर्ष्यु निद्ध्याद्यया-पिएडम् ॥ २०॥

श्रङ्दवेत्यूहः॥

भा०—वायें हाथ में उस अक्षन से रंगी हुई कुश की तीन पिख़्ली लेकर दिने हाथ की अंगूठे की जड़ से पूर्व आदि तीन गड़हा में स्थित तीन पिएडों पर एक २ क्रम से 'असावेतत् त आख़नम्०'' मंत्र पढ़कर प्रदान करे। पिहले और दूसरे पिंड पर पिख़ली देने पर एक २ बार हाथ धोलिया करे।। २०।।

तैलं सुरिभ च ॥ २१ ॥

सुरिम गन्यम् । श्राभ्यङ्दवानुत्तिम्पेत्यूहः ॥

भा० —इसके पीछे पिक जुली प्रदानानुसार इस मंत्र से उस २ के जपर तेल श्रीर सुगन्धि चन्द्रनादि प्रदान करे। विशेषता मंत्र में यह होगी कि श्राञ्जन शब्द के बदले में तैल श्रीर सुरिभ शब्दों का प्रयोग होगा।। २१।।

विएडममृति यथार्थमूहेत् ॥ २२ ॥

तत्तद्विपयानुगुणमूहेन्।।

भा०—इसी प्रकार पिएड प्रभृति की यथार्थ ऊहा करे।। २२॥ स्था निहत्त्वप् ॥ २३॥

श्रथानन्तरदेशे कपूर्णां पश्चात् पाणी निधाय । निह्नवनिति वदयमाणस्य संज्ञा व्यवहारार्था ॥

भा०-श्रव बदयभाग् क्रिया को निन्हवन कहते हैं, उसको कहेंगे ॥ २३॥

पूर्वस्यां कर्ष्वां दक्षिणोत्तानौ पाणी कृत्वा नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरश्रूषायेति ॥ २४ ॥

श्रय पूर्वस्याः कर्ष्वाः पश्चात्समीपे दक्तिगां पाणि प्रागप्राङ्गुलि-मुत्तानं भूमौ निधाय तदुपरि तथैन सन्यं न्यक्चं कृत्वा जपेत् ॥

सन्योत्तानौ मध्यमायां नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो रसायेति ॥ २५ ॥

सञ्यस्योपित दिल्लाणं न्यब्न्धं कृत्वा ॥ दक्षिणोत्तानौ पश्चिमायां नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो मन्यव इति ॥ २६ ॥ स्पष्टम् ॥

अञ्जलि कृत्वा नमो व इति ॥ २७ ॥ नमस्काराञ्जलि कृत्वा पितृनुपतिष्ठते ॥

भा०—इसके पश्चात् पहिले पिएड पर दिच्या हाथ करतल उत्तान रक्ख कर उस पर वांया करतल श्रोंधे मुंह उसी दिहने करतल पर नीचे को हो। उसके पश्चात् मध्यम पिएड पर वामोत्तान दोनों हाथ (वायां करतल चित्त श्रीर उस पर दिहना करतल नीचे को श्रोंधे मुंह) पर श्रनन्तर शेष पिएड पर फिर दिच्योत्तान दोनों हाथ पर सबके श्रन्त में समस्त पिएड लच्च करके श्रञ्जलि पूर्वक "नमो वः०" इत्यादि चार मंत्रों से चार नमस्कार करे।। २४। २४। २६। २०॥

सूत्रतन्तून् कर्षुषु निद्ध्याद्यथापिएडमेतद्व इति ॥२८॥

क्रमेण ॥

भा०-पत्नी कर्नुक सम्पादित रेशमी कपड़े के किनारे से एक र सृत लेकर पूर्वादि गड़हे क्रम से पिता आदि के नाम ले लेकर "एतत्ते वासः " इत्यादि मंत्र से पिएड आदि के ऊपर प्रदान करे॥ रन।।

ऊर्ज वहन्तीिति कर्षूरनुमन्त्रयेत् ॥ २९ ॥ सकृत ॥

भा०-पूर्व स्थापित उस जल पात्र को बायें हाथ में लेकर पहिले की नाईं "पितृतीर्थ" मार्ग से अंगूठे से एक ही बार में तीन पिएड पर "ऊर्ज वहन्ति०" मंत्र से परिसिंचन करे॥ २६॥

मध्यमं पिएडं पुत्रकामां पाश्ययेदाधत्तेति ॥ ३०॥ पतिर्मन्त्रं त्र्यात्॥

भा०—पुत्र की कामना वाली पत्नी (परन्तु मंत्र की पति पढ़े) "आधत्तं" मंत्र पढ़वा कर मध्यम पिएड को सवको या थोड़ा भन्नण करे॥ ३०॥

अभूनो द्त इत्युल्युकमग्नों प्रक्षिपेत् ॥ ३१ ॥ यहित्यातो निहितं मन्त्रलिङ्गात् ॥ इंद्वं पात्राएयतिहरेयुः ॥ ३२ ॥ निहितानि परिचारका उद्वासयेयुः ॥

मा॰—"अभून्नो॰" मत्र को पढ़कर गड़हे आदि के दिच्चणार्द्ध में रक्खा इंगोरा पर जल छिड़के और उस भस्म पर चहस्थाली पात्र आदि घोकर लावे॥ ३१। ३२॥

एष एव पिएडपितृयज्ञकलपः ॥ ३३ ॥

कल्न इति प्रयोगक्तुप्तिरेवातिदिश्यते, न कालः। स त्वन्यतो विज्ञायते यस्मित्रहोरात्रेऽमावास्याच्च्याः तिसन्नेवापराह्वं कुर्यात्। विशेषस्तूच्यते॥

मा०—यही पिएडपितृ यज्ञकलप है ॥ ३३ ॥
युद्ध जनौ हिन: श्रपयेत ॥ ३४ ॥
चहरेव न मांसम् ॥
तत एवातिमण्येत् ॥ ३५ ॥

गृह्माग्नेरेवैकदेशम् । प्रणीतस्य कर्मापवर्गे लौकिक्त्वम् । अत्र ब्रह्मास्ति, द्त्रिणा च हविरुच्छिष्टदानम् ॥

भा॰ - आहितामि यजमान लोग इस श्राद्ध के हिंब को गृह्य अग्नि में पकार्वे और उसी में पूर्वोक्त अति प्रणयन करें।। ३४। ३४॥ एका कर्युः।। ३६॥

एकस्यामेव पित्रादीनां त्रयाणामि सर्वं यथाक्रमं कुर्यात्॥ भा०— त्रनाहिताग्नि के गृह्याग्नि में वह सम्पन्न होगा। इस कार्य में तीन कर्षू न होंगे वरन एक ही कर्षू में तीनों थिता, पितामह; प्रथितामह का कार्य होगा॥ ३६॥

न स्वस्तरः ॥ ३७॥

न स्वस्तरदेशे द्रव्याणां निधानम् ॥

भा०—श्रौर स्वस्तर देश में द्रव्यों का सादन भी नहीं होगा॥ ३७॥

इन्द्राएयाः स्थालीपाकस्यैकाष्टकीति जुहुयात् ॥ ३८ ॥ चैत्री पौर्णमासी कालः 'चैत्र्याश्वयुजी' इति गौतमवचनात्। 'इन्द्राएये त्वा जुष्टं निर्वपामि'इति निर्वापः। एकाष्टकेति प्रधानाहुतिः चक्रतन्त्रमेतत्॥

इति खादिरगृह्यवृत्तौ तृतीयस्य पटलस्य पञ्चमः ख्राडः पटलश्च समाप्तः ॥ ३ । ४ ॥

भा०—चैत्र की पूर्णमासी को एकाष्ट्रका को स्थालोपाक से "इन्द्राएँगै त्वा जुर्छ निर्वपामि' मंत्र पढ़कर एकाष्ट्रका की प्रधान स्राहुति देवे ॥ ३८ ॥

इति खादिरगृह्यसूत्र वृत्ति के तीसरे पटल के पञ्चम खण्ड का भाषानुवाद पूरा हुआ तीसरा पटल भो समाप्त हुआ।। ३। ४॥

उक्तानि नित्यानि । पुष्टिकामार्थानि च वच्यमाण्मोजननिय-मानपेच्वाणि मन्त्रक्रमानुसारेणोक्तानि । इदानीं वच्यमाण्काम्यविशेषार्थं भोजननियममाह्-

काम्येषु षड्भक्तानि त्रीणि वा नाश्नीयात् ॥ १ ॥

काम्यप्रहणाद्यत्र कामप्रतिपादनपरः कामशब्दः इच्छाशब्दो वा नास्ति तत्र नायं नियमः । चतुर्थ्या पद्धम्या वा छादित्योपस्थाने, 'भू-र्भुवस्त्वरोम्, छादित्य नावम्, वास्तोष्पते'' इत्येतेषुः कम्बृकपण्योपनािष-होमेषु, प्रन्थिकरणे, हरितगोमयप्रभृतिषु, छां च परिसभाष्तेर्नियमाभावः। ब्रीहियवाज्ञततरंडुलान् तिलतरंडुलान् कणान् कम्बूकान् पुरीषह्रितगी-मयं च परिचरणतन्त्रेण, जुहुयात्, शंकुशतं सिमत्तन्त्रेण वास्तूपतापि-होमौ चरुतन्त्रेण, शिष्टान् होमानाज्यतन्त्रेण । षड्भक्तानि ज्यहम्॥

भाव्यकर्म कर्म करने के पहिले दिन तीन मध्यान्ह और दो रात्रि का भोजन छोड़ देवे। यदि एक साथ दोनों भोजन न छोड़ सके तो कम से कम एक भोजन छोड़ देवे। अर्थात् दिन रात में केवल एक बार भोजन करे।। १॥

नित्यभयुक्तातामादितः ॥ २ ॥

नियमानन्तरं नियमेन प्रयोक्तुप्रशक्तानामादावभोजनम् ॥

जे। कर्म किसी एक कामना की सिद्धि के लिये अनेक वार करना पड़े ऐसे कार्य में एक ही वार प्रथम वार पूर्वोक्त पहिला।तीन दिन भोजन न करे या एक भोजन करे।। २॥

उपरिष्टात्सानिपातिके ॥ ३ ॥ नैभित्तिकैकं कृत्वा अभोजनप् ॥

भाव-निमित्त घटना के पीछे नैभित्तिक कर्म समूह की दीजा कर्तव्य है, वही वैसे कर्मों के लिये निर्दिष्ट काल है। उसके पहिले स्रभोजन या एक भोजन या उपवास इनकी व्यवस्था होगी॥ ३॥

एवं यजनीयमयोगेषु । ४।

यजनीय इति निर्दिश्य विहितेषु कर्मसु॥

भा०—िनिर्दिष्ट विहित कर्मों में जो एक दिन में या अनेक दिनों में समाप्त हो ऐसे सब कम्मों में प्रति दिन प्रातःकाल कुछ थोड़ा सा खाकर तब कार्य में प्रवृत्त होवे॥ ४॥

अर्थमासवती ॥ ५ ॥

"त्रर्धमासत्रती पौर्णमास्यां रात्रौ' इत्यादावर्धमासमभोजनम् ॥ त्रशक्तौ पेयमेकं कालम् ॥ ६॥ त्रर्थमाससत्रते । पेयं चीरादि ॥

भा०—श्रद्धमास त्रत पूर्णमासी की रात्रि से आरम्भ होता है इसमें श्रावे मास तक विना भोजन किये रहना पड़ता है। यदि' कारणवश विना भोजन के त्रती सेन रहा जावे तो प्रत्येक दिन केवल एक वार पेय (दूध आदि तरल पद र्थ) पान कर त्रत करे ॥ ४ । ६ ॥

अग्एये प्रयदं जपेदासीन: प्रागग्रेषु ॥ ७॥ अत्रासननियमार्ग्यत्र जपे त्वासननियमो नास्ति ॥ एवं ब्रह्मर्श्चसकाम: ॥ ८॥ एवं जपन् ब्रह्मवर्च ती भवति ॥ यथोक्तं पशुकाम: ॥ ९॥ गोष्ठे पशुकाम: उदगमेषु ॥

भा०—जिसको ब्रह्मवर्चा होने को कामना हो वह बन में जाकर पूर्वाप बिद्राये हुए कुशासन पर बैड कर प्रपट् पठित मंत्रों से साधना करे और जो कोई पुत्र या पशु की इच्छा करे वह वन में जाकर उत्तराय कुशासन पर बैठ कर प्रपट् मंत्र से साधना करे। ।।७-५-६

सहस्रवाहुरिति पशुस्त्रस्त्ययनकामो ब्रीहियवौ जुहुयात्।।१० पशुनां शोभनाविच्छेदकामः। मिश्रीकृत्य विः प्रचाल्य होमः। स्वाहेति च होमो द्वितीयः॥

भा०—जो कोई पालतू गौ, भेड़, ऋादि पशु की भलाई चाहे वह "सहस्रवाहुः" मन्त्र से धान्य श्रीर जौ मिलाकर होम करे॥१०॥

येनेच्छेत्सहकारं कौतोमतेनास्य महावक्षफलानि परिजया दद्यात् ॥ ११ ॥

येन सस्यमिच्छेत्तस्मा उदुम्बरफलानि 'कौतोमतम्' इत्यने-नाभिमन्त्र्य दद्यात् ॥

मा०—जो किसी 'अन्य व्यक्ति की प्रसन्नता चाहे, वह "कौतोम०" मंत्र से कितपय महावृत्त के फलों (आम या सुपारी आदि) को दान करे। इन फलों को गुच्छा से स्वयं एक २ कर फल तोड़ लेवे॥ ११॥

अर्धमासत्रती पौर्णमास्यां रात्रौ नाभिमात्रं प्रगाह्याविदा-सिनि इत्रेड्सततएडुलानास्येन जुहुयादुदके वृक्ष इंग्ति पश्चिमिः पार्थिवं कर्म ॥ १२ ॥ अविदासिनि अशोष्ये तिष्ठन्नेवाचततण्डुलान् । अर्थलोपान समिन्। अग्निस्थान उद्कम्। पृथिवीपतित्वप्राप्त्यर्थमिद्मुक्तं कर्म॥

भा०—पूर्णमासी की रात में जिस तालाब का जल मीष्म ऋतु
में भी न सूखे। उसमें नाभि मात्र जल में पैठकर, स्नान कर, मुंह में
अजत तर्ये लेकर "वृत्त इव०" इत्यादि १ मंत्रों से उसी जल में
एक २ कर आहुति देवे और इन १ मंत्रों में से प्रत्येक मंत्र में 'स्वाहा'
-शब्द का भी श्रयोग करता जावे॥ १२॥

प्रथमयाऽऽदित्यसुपतिष्ठेद्घोगकामोऽर्थपतौ प्रेक्षमाखे ॥१३॥
"वृत्त इत्र" इत्यादीनामेव प्रत्येकं कर्मोच्यते कामनाभेदेन। एषु
नार्धमासत्रतित्वम् । द्रव्यानुभवकामः द्रध्यपतावात्मानं पश्यति सति॥

भा०—उक्त पांच मंत्रों द्वारा पहिले पार्थिव कर्म कहा गया है। अब उन्हों पांच मंत्रों में से प्रत्येक स्यवहार में एक २ दूसरे २ कार्य कहे जाते हैं। जिसको भोग की इच्छा होवे वह "युद्ध इव०" मंत्र से सूर्य का उपस्थान करे। जिस स्थान में अभी कार्य की सिद्धि की सम्भावना हो, ऐसे स्थान में यह अनुष्ठान किया जाय। ऐसा ही करने पर वह प्रयोजन सिद्ध होगा॥ १३॥

द्वितीययाऽक्षततएडुलानादित्ये परिविष्यमासे वृहत्पत्रस्य-स्त्ययनकामः ॥ १४ ॥

"स्वाहा" इति द्वितीयाम् । पत्रं गमनसाधनं महतामश्वादीनां शोभनाविच्छेद्काम ॥

भा०—हाथी आदि बड़े वाहन के कल्थाण के लिये "ऋत्यं सत्ये०" इस दूसरे मंत्र से अज्ञत तर्गडुल मिलाकर हवन करे। जिस समय सूर्य मण्डल में "परिवेष" लगा हो उसी समय यह किया जावे॥ १४॥

तृतीयया चन्द्रमसि तिलतगडुलान् क्षुद्रपशुस्वस्त्यय-नकामः ॥ १५॥

परिविष्यमाणे चन्द्रमसि । मिश्रोक्टत्य होमः । स्वाहेति द्विती-याम् । जुद्रपशवोऽजाविकादयः ॥ भा०—गौ, भेड़ आदि ब्रोटे २ पशुओं के कल्याण चाहने वाले "अभिभगोऽसि॰" तीसरे मंत्र से कुछ तिल तण्डुल मिलाकर होम करे। जिम समय चन्द्रमण्डल में परिवेष उपस्थित हो उसी समय यह कार्य किया जाय।। १४॥

चतुर्ध्याऽऽदित्यग्रुपस्थाय गुरुमर्थपभ्युक्तिष्ठेत् ॥ १६ ॥
महदूव्यं प्राप्तुमुद्योगं कर्यात् । एवं कृते फलातिशयो भवति ॥
भा० —यदि किसी बड़े प्रयोजन ( ऋर्थ लाम की ) सिद्धि की
कामना हो तो 'कोश इव०'' मंत्र इस चौथे मंत्र से सूर्यं का उपस्थान
कर प्रयोजन को लहयकर यात्र। करने से प्रयोजन सिद्ध होकर निर्विचन
घर बापस आवेगा ॥ १६॥

पञ्चम्याऽऽदित्यमुपस्थाय गृहानेयात् ॥ १७॥ वेशम प्रविशोत् उत्तिष्ठेत् फलातिशयो भवति ॥ १७॥

भा०—"आकाशस्यैप०" इस पञ्चम मंत्र से सूर्योपस्थान करने से अपने घर को लद्दय कर प्रति यात्रा में करने से निर्विध्न घर वापिस आवेगा ॥ १७॥

अनकाममारं नित्यं जपेत् भूगिति ॥ १८ ॥

श्रहरहरामरणाद्यो जपेत् श्रनकाममरणं स लमते श्रकामो न भ्रियते इत्यर्थः ॥

भा०—जो लोग बिना कष्ट अपनी आयु पूरी होने पर अपना भरण चाहें वे "भूः" इस मंत्र को भरण काल तक सदा जाप करें। इस मंत्र के प्रभाव से शत्रु कृत मारण आदि से भय नहीं रहता और कुछ आदि राज रोगों से भी मरने का भय नहीं रहता है॥ १८॥

यजनीये जुहुयान्मूध्नेंऽिध म इति षड्भिर्वामदेव्यर्गिर्म-हाव्याद्वतिभिः प्राजापत्यया च ॥

नित्यादूर्ध्वमेतत्॥

श्रतक्ष्मीनिर्णोदः ॥ २०॥

उक्तस्य होमस्य फलं अलद्म्या अपगमः ॥

भा॰—"मुध्नोंऽधिमे॰" इत्यादि छः मंत्रों से एक र आहुति प्रदान करे। यह यजनीय त्रयोग में परिगणित है। इस क्रिया के फलसे दरिद्रता दूर होती है। उन छः मंत्रों से आहुति देने के अतिरिक्त

वामदेव्य ऋचा, महाव्याहृति श्रौर प्राजापत्य मंत्रों से भी होम करे।। १६। २०॥

अक्षेमे पथ्यपेहीति जपेत् ॥ २१ ॥

मन्त्रलिङ्गात् चेमो भवति॥

भा०-यदि मार्ग में जाने में किसी प्रकार का भय उपस्थित होने की सम्भावना हो तो "अपेहिं०" इत्यादि मन्त्र का जय करें.॥ २१ ॥

यशोऽहिनत्यादित्यग्रुपतिष्ठे चशस्कामः पूर्वाह्यपध्यन्दिना-पराह्वेषु ॥ २२ ॥

'तेन मा विश इत्यन्त एव मन्त्रः । श्रहरहरूपस्थानम् ॥ मातरह्वस्येति यथार्थमृहेत् ॥ २३ ॥

मध्याहस्य सायाहस्येति च ॥

भा०—जिसको यश की कामना होवे वह "यशोऽहं०" इन पांच मंत्रों से प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल में सूर्य का उपस्थान करे और "प्रातरन्हस्य०" इस पाठ की जगह मध्यान्ह काल में "मध्यान्हस्य" और सायंकाल में "अपरान्हस्य०" बद्ल कर पाठ करे॥ २२। २३॥

त्रादित्यनाविषिति सन्ध्योपस्थानं स्वस्त्ययनम् ॥ २४ ॥ शुभागमप्राप्तिसावनमेतदहरहरुपस्थानम् ॥

भा०-प्रातः त्रौर सायं दोनों सन्धि वेला में "त्रादित्य नावं०" मन्त्र से सूर्य्य का उपस्थान करे तो कल्याण होगा ॥ २४॥

खयन्तं त्रेति पूर्वां मतितिष्ठन्तं त्वेति पश्चिमान् ॥ २५ ॥

'उद्यन्तं त्वा' इति पूर्वां सन्ध्यासुपतिष्ठत् "उदीयासम्" इति मन्त्रं समापयेत्। "प्रतितिष्ठन्तं त्वाऽऽदित्यानुप्रतितिष्ठासम्" इति पश्चिमाम्॥ इति खादिरगृद्धसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य प्रथमः

खरहः ॥ ४ । १ ॥

भा०-उक्त उपस्थान काल में प्रांतः सन्धि समय "उद्यन्तं०" श्रौर सायं सन्धि काल में "प्रतितिष्ठन्तं०" मंत्रों का भी जप करे॥ २४॥ इति खादिरगृद्यसूत्रवृत्ति के चौथे पटल के प्रथम खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुआ॥ ४।१॥ अर्घमासत्रती तामिस्नादौ ब्राह्मणांनाशयेत् त्रीहिकंसोदनम् ।१ अपरपत्ते प्रतिपदि त्रीह्योदनं कंसैभौंजयेत् ॥ तस्य कणानपरासु सन्ध्यासु प्रत्यग्रामात् स्यण्डिलसुप-लिप्य भलायेति जुहुयाद्गल्लायेति च ॥ २ ॥

बक्तत्रीहिकणान् सायंसन्ध्यासु त्रागामितामिस्नादेः। भलाय स्वाहा भल्लाय स्वाहेति च ॥

ए वमेवापरस्मिस्तामिस्रादौ ॥ ३ ॥

त्रीहिकंसोदनं त्राह्मणानाशयेत्।।

भा० — कृष्णपत्त की प्रतिपदा तिथि को संधि वेला समय कांसे के वर्तन में तण्डुल पाक करके कई एक ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस के अनन्तर अमावास्या तक प्रति सन्धि वेला में गांव के वाहर पश्चिम ओर चौराहे पर अग्नि जला कर उसमें 'भलाय०'' और "भल्लाय०'' मन्त्रों से सूर्य के सम्मुख होकर इस तण्डुल की कणा आदि से होम करे। इसी पूर्वोक्त रीतिसे और भी दो कृष्णपत्तों में, अनुष्ठान करे इससे तीन कृष्णपत्त में यह अर्द्धमास ब्रत सम्पन्न होगा॥१।२।३॥

ब्रह्मवर्यमासमाप्तेः॥ ४॥

आफलनिष्पत्तेः कर्म आ कर्मसमाप्तेर्ब्रह्मचर्यम् ॥ कि तस्फलम्— भा०—जिस तीन कृष्णपत्त में यह "अर्द्धमास व्रत" अनुष्ठान किया जावे उस में व्रत की समाप्ति तक व्रती व्रह्मचर्य से रहे ॥ ४॥

**ब्राचितशतं भवति ॥ ५ ॥** 

यावद्रव्यमस्य पूर्वमाचितं संचितं तच्छतगुणितं भवति । इदमस्य फल्मम् ॥

भा०—जो कोई १०० त्राचित (२४ मन या एक गाड़ी बोम ) के प्राप्ति की कामना करे। वह त्रद्धिमास व्रत का त्रनुष्टान करे तो उसको त्रपने संचित द्रव्य से सौगुणा वढ जावेगा।। ४।।

गौरे भूमिभागे ब्राह्मणो लोहिते क्षत्रियः कृष्णे वैश्योऽन-सानं जोषयेत् समं लोमशमनिरिणमशुष्कम् ॥ ६ ॥ अवसानं वासस्थानं सेवेत । श्वभ्रादिरहितं तृण्बहुलमनूषरमनित कठिनमुदकबहुलमिति यावत् ॥

यत्रोदकं प्रत्यगुदीचीं प्रवर्तेत ॥ ७ ॥

प्रत्यगुद्कप्रवणम्॥

अक्षीरिणः कएटिकनः कटुकाश्चात्रौषधयो न स्युः ॥८॥ अज्ञीरिणः कएटिकनः कटुरसाश्च वृज्ञा यत्र पूर्वमि स्युः तमिष वर्जयेत् ॥

भा० — अब वास्तु प्रकरण आरम्भ हुआ। अन्यान्य मकानसे यथा
सम्भव दूर पर अपने रहने का मकान वनाने के लिये उपयोगी अच्छी
भूमि लेके। वास की भूमि समतल हो, घासों से छिपी रहे, तालाब
आदि जलाशय से इठात् गिर जाने का भय न हो, ऐसे स्थान के पास
पूर्व या उत्तर दिशा में वड़ा जलाशय हो, और जिस स्थान के पात
सीरी, काटेदार, और कर्डुई औपिंध वृद्ध न हों। ऐसा स्थान वास के
लिये पसन्द करे जिस स्थानकी धूलिका रङ्ग गौर हो वह ब्राह्मणके रहने
योग्य जानो। इत्रिय के लिये लाल रङ्गकी धूल वाली भूमि और वैश्य
वर्ष के लिये काली रङ्ग की भूमि चाहिये॥ ६। ७। ८॥

द्रभंसंमितं ब्रह्मवर्चस्यम् ॥ ९॥

दर्भसंयुक्तं, ब्रह्म वेदः तच्चोदितानुष्ठानजनितं वैमल्यं ब्रह्मवर्चसं तद्र्थं ब्रह्मवर्चस्यम् ॥

बृहत्तृर्णैर्वस्यम् ॥ १० ॥ स्थूलरुर्णेर्युक्त वस्यं बलार्थम् ॥ मृदुरुर्णेः पशन्यम् ॥ ११ ॥

शादाभिर्मचडलद्वीपिभिर्वा दीर्घस्थूलीभिः मृदुतृशौर्युक्त पश्वर्थम्।।
भा॰ — जिस स्थान में समिथिक कुश जन्मता हो वह ब्राह्मण के
लियें जिस स्थान में घोड़ा त्रादि के खाने के योग्य बड़ी घास ब्रादि
बहुतायत से पाई जावें वह चित्रय के लिये ब्रौर जिस स्थान में कोमल
२ घास हो वह दैश्य के लिये जानो।। १। १०। ११।।

यत्र वा स्वयं कृताः श्वभ्रास्सर्वतोऽभिग्रुखाः स्युः ॥१२॥ अप्रयत्नजाः कर्ष्वं ऊर्ध्वमुखोदका यत्र तद्पि गन्यम् ॥ आवास-भूमिक्का। श्रथ गृह्माह्—

भा०—जिस जमीन के चारों त्रोर त्रकृत्रिम गड़हा हों त्रौर सब त्रोर जल बहने वाले गड़हे हों, ऐसी जमीन भी बासोपयोगी है।।१२॥

प्राग्द्वारं धन्यं यशस्यं चोदगृद्वारं पुत्र्यं पश्च्यं च दक्षिणा-पश्चिमद्वारे सर्वे कामां अनुद्वारं गेहद्वारम् ॥ १३ ॥

यस्यां दिशि विद्विरां तस्यामेवान्तर्द्वारं स्यात् ॥

असंलोको स्यात्।। १४॥

गृहमध्ये द्वारं न स्यात् । द्वारद्वयं परस्परमॄजु स्यादिति केचित् ॥ अथ तद्गृहवासिनामभ्युद्यसाधनं होममाह—

भा०—घर का वाहरी द्वार को यश और वल की कामना वाला पूर्व मुँह वनवावे। जो पुत्र और पशु की कामना करे वह उत्तर मुँह-द्वार बनावे। और जिसको कोई विशेष कामना न हो वह दक्षिण मुँह द्वार बनवावे। परन्तु पश्चिम मुँह द्वार न बनवावे।। मकान के भीतर के घर के द्वार आदि इस प्रकार रहें। जिसमें घर के भीतर के मनुष्य आदि वाहरी द्वार से न दीख पड़ें।। १३। १४।।

पयसो इवि: ॥ १५॥

वास्तोष्पतये त्वा जुष्टं निर्वपामीति निर्वापः ॥

भा०-घर में रहने वालों के कल्याण के लिये "वास्तोष्पतये त्वा जुष्टं निर्वपामि०" मन्त्र से पायस का हवन करे ॥ १४॥

कृष्णा च गौः ॥ १६॥ वसार्थम्॥

भा०—त्र्यौर काली गौ वसा के तिये लावे ॥ १६ ॥ त्रा वा श्वेतः पायस एव वा ॥ १७ ॥

पायस एवैको हविः स्यात्। पशोर्निवृत्तिरेवास्मिन पन्ने। होमेऽि वसाया निवृत्तिरेव।।

भा०-या सफेद बकरा या केवल पायस ही से हवन करे।। १७॥

मध्ये वेश्मनो वसां पायसं चाज्येन मिश्रमष्टग्रहीतं जुहुया-द्वास्तोष्पत इति ॥ १८ ॥

यावदन्तर्गृहायाममध्ये रज्जुचतुष्टयं कृत्वा प्रतिदिशं मध्ये विश्मनः प्रतिकोणं चायम्यान्तर्गृहरज्जुसङ्गमदेशे रज्ज्वन्तरेषु च प्रागु-पक्षमं प्रदक्षिणं गोमयेनोपिलप्य शमीपिलाशश्रीपर्णानां पत्रैः पुष्पैस्तर्ञ्जु-लैश्च गृहं सर्वतः प्रकीर्य मध्ये उपालप्ते प्रपदान्तं कृत्स्ने गृह्येऽग्नौ व्या-हृतिभिराज्यं हुत्वा वसां पायसं च भिश्रीकृत्याज्येन च मिश्रितादृष्टावव-दानानि जुह्वां गृहीत्वोपस्तरणाभिघारणवर्जं 'धानावन्तम्' इति गीत्वा 'वास्तोष्ट्यते' इति जुहुयान्।।

भा०—मकान के भीतर लम्बाई और चौड़ाई का नाप करके घर के प्रति दिशा में घर के प्रति कीण को जहां नाप के रस्सी का संगम हो उन सक्तम स्थलों में पूर्व से आरम्भ कर प्रवृत्तिणा क्रम से गौ के गोवर से लीप कर शमी, पलाश श्रौर वेलके पत्तों, फूलों और चावलों को छीट कर लीपे हुये स्थान के बीचमें प्रपद्तक सारी क्रियाओं को कर के सम्पूर्ण गृह्य अगिन में त्याहृतियों से आज्य की आहुति कर वसा घृत पायस को मिला कर और आज्य को मिला कर आठ खण्ड करके (जिस प्रकार ४ वार लेना कहा गया है, उसी प्रकार ) प्रतिवार प्रवृत्त करता हुआ होम करे। उनमें से "वास्तोष्पते" मन्त्र से पहिले आहुति देवे और इसके पीछे "वामदेश्य संज्ञक तीन मन्त्रों से उसके पश्चात् महाज्याहृति आदि का प्रयोग करे अनन्तर "प्रजापतये०" मंत्र से शेष आहुति देवे ॥ १८॥

याश्र पराः ॥ १९॥

याः पराश्च 'हये राके' इत्याद्यश्चतस्रः ताभिश्च जुहुयात् । चका-रात्पूर्ववदृष्टगृहीतम् ॥

भा०—"हरेराके॰" इत्यादि चार मन्त्रों से चार त्र्याहुति देवे त्रीर पूर्व की भांति त्राठ वार प्रहण करके ।। १६ ।।

सप्तालक्ष्मीनिर्णोदं ताभिश्च॥ २०॥

ताभिरिति प्रकृतापेच्तवाद्याः परा इत्यनुकृष्यते । अलद्मीनि-

र्खोदे याः परा वामदेव्यिर्भिर्महाव्याहृतिभिः प्राजापत्ययेति सप्त तामिश्र जुहुयान् च शब्दः पूर्ववत् ॥

भा० —दिरिव्रता दूर करने के लिये जो पूर्व छः मन्त्रों से आहुतियां कही गई गई हैं उनसे भी और वामदेव्य ऋचा, व्याहृतियां और प्राजापत्य मन्त्रों से भी आहुति देवे ॥ २०॥

हुत्वा दिशां बलीन नयेत ॥ २१ ॥

हुत्वेति स्विष्टक्रनप्रतिषेवार्थं, उक्तान्येव हवींषि हुत्वेति तस्प्रति-षेधात् । नात्राज्यभागौ स्तः । तेषामभात्रात् पुरस्ताद्व्याहृतिहोमा स्युः । गानान्तं समाप्य वितहरणम् । नात्र हिवहिन्द्वष्टप्राशनम्, नापि तस्य ब्राह्मणे दानं, तस्य वित्रहरणे विनियोगात्। उक्ता वित्रहरणमन्त्राः सामविधौ-- 'श्रथातो वास्तुशमनम्' इत्यादिना । तत्सर्वं मन्त्रशेषत्वेन परिगृद्धते । कथमेतद्वगम्यते ? 'गायसं ह्विः' इति वक्तव्ये बहुत्ववच-नाद्विभक्तिव्यत्ययः कृतो बह्वत्रानुक्तमि विद्यत इति स्वियतुम्। अत एव दिग्महर्णं मध्यस्याप्युपलत्तरणार्थम् । उपलिप्तस्थानेषु पलाशमध्यम-पत्राणि स्थाप यहा तेपु वली त्रिद्ध्यान् 'प्रजापत्ये स्वाहा' इति मध्ये 'इन्द्राय स्वाहा' इति पूर्वे, 'वायवे स्वाहा' इति दित्तणपूर्वे, 'यमाय स्वाइा' इति द्विणे. पित्रभ्यस्त्वाहा' इति प्राचीनावीती पितृतीर्थेन द्तिणपश्चिमे, यज्ञोपवीत्यप उपस्पृश्य 'वहणाय स्वाहा' इति पश्चिमे, 'महाराजाय स्वाहा' इत्युत्तरपश्चिमे, 'सोमाय स्वाहा' इत्युत्तरे, 'महे-न्द्राय स्वाहा' इत्युत्तरपूर्वे, 'वासुकये स्वाहा' इति भूमौ यत्र कुत्रचित्, 'नमो त्रह्मणे' इत्युपरिष्टात्। एव एव विलक्रमः। सर्वेषां वैश्वदेववत् डमयतः परिपेकः॥

अवान्तरदिशां चोर्घ्वाचाचिभ्यां च ॥ २२ ॥

एतत्पूर्वत्रोष्ट्रपदे न्त्रत्रे कार्यम् । एवं कृते बहुपशुधनधान्यहिरस्य मायुष्मत् पुरुषं वीरसूसुभगाऽविधवस्त्रीकं शिवं पुरुषं वास्तु भवति ॥

भा० वास्तु होम करने के घोछे प्रदित्तणानुसार प्रत्येक दिशाओं में खौर प्रति कोणों में क्रम से १० विल प्रदान करे। इस क्रम से करे कि घर के मीतर लीपे हुये स्थानों में पलाश के पत्तों को रक्ख कर उन पर विलयों को मंत्र पढ़ २ कर रक्खे। "प्रजापतये स्वाहां" मंत्र से मध्य भाग में "इन्द्राय स्वाहां" मन्त्र से पूर्व दिशा में "वायवे स्वाहा" मन्त्र से अग्निकोण में "यमाय स्वाहां" मन्त्र से दिच्चण दिशा में, "पितृभ्यस्स्वाहां" मंत्र से प्राचीनावीती हो के पितृतीर्थ से नैऋत्य कोण में, तब जनेऊ बदल कर यज्ञोपत्रीती होकर जल से हाथ घोकर "वहणाय स्वाहा" मन्त्र से पश्चित दिशा में, "महाराजाय स्वाहा" मन्त्र से वायव्य कोण में, "सोमाय स्वाहा" मन्त्र से उत्तर दिशा में, "महेन्द्राय स्वाहां" मंत्र से ईशान कोण में, "वासुकये स्वाहा" मंत्रसे भूमिमें (जहाँ कहों) और "नमों ब्रह्मणे स्वाहा" मंत्र से उपर को यही बिल का कम है ॥ २१। २२॥

एवं संवत्भरे संवत्सरे नवयज्ञयोर्वा ।। २३ ।। षट्सु पट्सु मासेषु प्रोष्ठपद एव । चतुर्षु मासेषु वा । तथा श्रुतेः। बहुकृत्वः करणे फलभूयस्त्वम् ॥

भा०-प्रित दिन बिल कर्म करे या प्रित वर्ष जिस समय नया अनाज हो और जिस समय जौ आदि शस्य नूतन हों उन २ नवान्न समय में इन तीन बिल कर्म को करने से भी हो सकता है।। २३॥

वशंगमावित्येताभ्यामा हुति जुहुयाद्यमिच्छेद्वशमायान्तं तस्य नाम गृहीत्त्राऽसाविति वशी हास्य भवति ॥ २४ ॥

सम.विष्णुशर्माऽयं वशमेत्वितिवन्नाम गृहीत्वा ॥ इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य द्वितीयः खण्डः ॥ ४ । २ ॥

मा०—जिस व्यक्ति को वश करने की इच्छा हो उसका नाम लेकर "वशक्तमौठ" मन्त्र से त्रीहि होम श्रौर "शङ्करच०" मन्त्र से यव होम करे। जब तक काम ठीक सिद्ध न हो तब तक प्रतिदिन करता जावे॥ २४॥

> इति खादिरगृह्यसूत्र वृत्ति के चौथे पटल के दूसरे खण्ड का भाषानुवाद समाप्त हुन्ना ॥ ४।२॥

त्रर्थनासत्रती पौर्णनास्यां रात्रौ संक्रगती जुदूवादेखास-र्यसाव्यक्ततः ॥ १ ॥

'आकृतिम्' इति मन्त्रं वध्यमानतया शत्रून् ध्यायन् अहुयात् । आयसरांकृनामेकैकमतु यज्ञियस्य वृत्तस्य रांकुनाऽपि जुहुयात् ॥

खादिरानायक्कायोऽयापरम् ॥ २ ॥

अर्थमासत्रतित एव खादिरशंकृभिः कर्तव्यं कर्मान्तरिमस्यर्थः ।।
भाग्—'बाकृतों देवी' इस मंत्र को एकाइनी कहते हैं। इस
एकाइनी मंत्र विषयक जो दो कर्म कहे जाने वाले हैं। उन्हीं दो कर्मों
को ''अर्द्वमास ब्रत'' समफो। यदि अपनी या दूमरे की अपयु बढाने
की कामना हो तो खैर की १०० कील होम करे और अपनी या दूसरे
को मारने की कामना हो तो लोहे की १०० कीलकों का होम करे। ये
दोनों काम पूर्णिमा की रात में करे और इनमें एकाइनी मन्त्र का
प्रयोग करे। यही शंकुशत नामक पहिला कर्म है।। १। २॥

प्राङ् वोदङ् वा प्रामानिष्क्रम्य स्थिएडलां समूख पर्वते वाऽऽरएयैगों पर्येम्तापयित्वाऽङ्गारान्योधास्येन जुहुयात् ॥ ३ ॥

अथेति प्रकृतापेचत्वात् अर्थमासन्नती, अपरमिति खादिरशा-खाभिः आकृतिभित्यनयाऽपरं कर्म कुर्योदित्यर्थः। आर्एयैरशुक्कैर्गो-मयैः स्थिरिडलमितशयेन तापित्वाऽभिमपोद्य तप्तायां भूमौ वक्त्रेण शंकुशतं जुहुयात्।।

भा०—गांव की वस्ती से पूर्व या उत्तर जाकर किसी एक चौराहे या पहाड़ पर जङ्गली करडे से एक वेदी अच्छी प्रकार लोहे के पात्र को तपाकर, उस अङ्गार आदि को हटाकर इस एकाचरी मंत्र को मन ही मन पाठ कर अपने मुंह में घी लेकर उससे होम करे॥३॥

द्वादश ग्रामा ज्यतिते ॥ ४ ॥

खादिरशंकुना तप्तभूमिसयोगाद्यदि अवलनं स्यात्तदा द्वादश प्रामास्तस्य होमात्सिद्ध्यन्ति ॥

ज्यवरा घूमे ॥ ५ ॥

ध्ममात्रे जाते त्रधवरयामास्सिद्धः यन्ति ॥

भा०-यदि खैर की कीलके तप्त होने से भूमि तप्त होकर शीघ हा ज्वाला उठे नो अनुष्णता को १२ गांव लाभ होंगे और यदि कुछ भी ज्वाला न उठे वरन धूम ही हो तो तीन ही गांव लाभ होंगे ॥।।।।। कम्बूकान् सायंत्रातर्जुहुयानास्य वृत्तिः क्षीयते ॥

राङ्कवलया 'आकृतिम्' इत्यह्राहर्जुहुयात्। स्वाहेति दितीयाम्।। भा०-भूसी से ''आकृतिं'मंत्र पदकर प्रतिदिन स्वाहा जोड़कर आहुति करे तो उसकी बृत्ति का नाश नहीं होता है।। ६।।

इदयहिममिनित परायहोमं जुहुयात् ॥ ७ ॥

येन येन पणते तेन तेन होमं हुत्या व्यवहारतो द्रव्यवृद्धिभवति। द्रव्यानुसारं च तन्त्रं, परिचरणतन्त्रं चेत् स्वाहेति द्वितीयाऽऽहुतिः॥

पूर्णहोमं यजनीये जुहुयात् ॥ ८ ॥

'पूर्णहोमप्' इति मन्त्रादिः। इतिशब्दाभावो मन्त्रतिङ्गानुसर-णार्थः। श्रतो यशः फलम् ॥

इन्द्रामवदादिति सहायकामः ॥ ९ ॥

स्पष्टम् li

भा०—यदि ऐसी इच्छा हो कि हम जो २ व्यवहार करें उसकी उन्नित होवे व्यवहार को वस्तु का कुछ श्रश लेकर "इदमहिममं०"मंत्र से होम करे। यदि यश की इच्छा हो तो "पूर्ण होमं यशसे जुहोमि०" मन्त्र से होम करे। श्रीर यदि सहाय कामना हो तो "इन्द्रामवदात्०" मन्त्र से होम करे। ये दोनों होस यजनीय प्रयोग हैं॥ ७। ८। ६॥

अष्टरात्रोपोषितः पाङ्वोदङ्वा ग्रामाच्चतुष्पथे समिद्धचा-ग्रिमौदुम्बर इध्मः स्यात् सुवचमसौ च जुहुयादसं वाइति श्रीर्वा इति ॥ १०॥

स्वचमसौ चौदुम्बरौ चमस आज्यधारणार्थः। 'अन्नं वा इति द्वाभ्याम्' इति सिद्धे पृथामहणं विषयबहुत्वार्थः, अतः 'उपतापिहोमे, अत्तेमे पथि' इत्यत्रचानयोरप्यनुवृत्तिम्सिद्धाभवति। अन्यथाऽऽनन्तर्यात् 'अन्नस्य' इत्येकस्यैवानुवृत्तिस्स्यात्॥ १०

भा०—यदि ऐसी इच्छा हो कि मैं बहुत पुरुषों का मालिक या ,मान्य वनूं तो वह व्यक्ति आठ रात भोजन न करे। इसी बीच में गूलर की लकड़ी का खुवा, चमस और इझ संग्रह कर अपने साथ लेकर गाँव के ईशान कोण में बाहर जाकर किसी चौराहे पर अग्नि स्थापन कर "अन्नं वा०" मंत्र से घी की आहुति देवे। और उसी के पश्चात् लगातार ''श्रीवा एष०" मंत्र से दूसरी आहुति देवे॥ १०॥

ग्रामे तृतीयामन्नस्येति ॥ ११ ॥

त्तीयामिति पूर्वेण निर्देशः पूर्वाभ्यामस्य वन्त्रमांणे फले समु-चयार्थः ॥ ११ ॥

त्राधिपत्यं प्राप्तोति ॥ १२ ॥ सर्वेषां स्वामित्वम् ॥

जपतापिनीषु गोष्ठे पायसं जुहुयात् ॥ १३ ॥

व्याधितासु गोषु तन्निर्हरणार्थमेवेदम्। द्वितीयानिर्देशात् सर्वे जुहुयात् पूर्वोक्ते स्त्रिभिमन्त्रैः। श्रतो न स्विष्टकृत् तद्भावात्राज्यसागौ, तेषामभावादादौ व्याद्वितिमहीमारस्युः॥ १३

भा० — अनन्तर गाँव में वापिस आने पर "अन्नस्य घृतिमिव" मन्त्र से तीसरी आहुति देवे। उस पुरुषाधिपत्य चाहने वाले व्यक्ति को यदि यह भी इच्छा हो कि मुभे वहुत पशु हो तो तीसरी आहुति को गोशाला में देवे। और यदि वह गोशाला गीली हो तो घी के बदले लोह चूर्ण की वहीं पर आहुति देवे।। ११। १२। १३।।

त्रक्षेमे पथि वस्तदशानां ग्रन्थि कुर्यात् सहायिनां च स्व-स्त्ययनानि ॥ १४ ॥

चेमसापेचे पथि गच्छन्नात्मनः सहायिनां च वस्नदशानां प्रन्थि कुर्यात् 'अन्नं वा' इत्यादिभिर्मन्त्रैः ॥

मा०-यदि मार्ग में दैवयोग से एकाएक किसी प्रकार का अय श्रा पड़े तो, शीघ ही अपने साथी पथिक के पास हो के पूर्वीक "अन्तं वा०" ३ मन्त्रों से स्वाहा जोड़ २ कर जप करते हुये कपड़े के किनारे के सूत आदि से गांठ दे। इसका फल यह होगा कि उसके साथी सहित सबको कल्याण होगा॥ १४॥

क्षुघे स्वाहेत्येताभ्यामाहुतिसहस्रं जुहुयादाचितसहस्रकामः। यावह्व्ये सति द्रव्यसचयवानयमिति लौकिका आहुः तत्सह-स्नगुणितमस्य फलम् ॥

भा०-यदि ऐसी इच्छा हो कि हमारे पास जितना माल हो उसका हजार गुणा हो, वह "जुवे स्वाहा," जुत्पिपासाभ्यां स्वाहा" इन दो मन्त्रों से एक सहस्र आहुति देवे ॥ १४॥

वत्सिमिथुनयोः पुरीपेण पशुकामः, अविमिथुनयोः क्षुद्र पशुकामः ॥ १६॥

पुरीचेगा 'चुधे स्वाहा' इत्येताभ्यामाहुतिसहस्रम् ॥

भा०-यदि ऐसी इच्छा हो कि हमारे पास बहुत पशु हो जाबें तो वह दो बछड़े के सूखे गोकर से उक्त तीन मन्त्रोंसे १००० आहुति देवे यदि यह कामना हो कि मेरे पास छोटे २ बहुत पशु हो जावें बह दो भेड़ के सूखे गोवर से उक्त तीन मन्त्रों से १००० आहुति देवे ॥१६

हित्तगोषयेन सायंप्रातर्जुहुयात् नास्य द्वितः श्रीयते ॥ १७ आर्द्रगोषयेन 'जुवे स्वाहा, जुित्पपासाभ्यां स्वाहा' इत्येताभ्यानेन होमः। जुहुयादिति प्रकृते पुनर्वचनं आहुतिसहस्रनिवृत्त्यर्थे द्विजा तिविहितवृत्तरत्त्रयः फलम्। अहरहर्होमः॥

इति सादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य पटलस्य तृतीयः खरुडः।।४।।३।।

भार्या यह चाहे कि मेरी वृत्ति का नाश न हो तो वह, गौ के गीले गोवर से उक्त तीन मन्त्रों से १००० आहुति देवे।। १७॥

इति खादिरगृह्यसूत्रवृत्ति के चौथे पटल के तीसरे खरड का भाषानुवाद समाप्त हुत्रा ॥ ४ ॥ ३ ॥

िष्यता दृष्टमद्भिरभ्युक्षन् जपेनमा भैषीरिति ॥ १॥ विषनाशः फलम् ॥

भा०-विषयर सांप, बिच्छू त्रादि के काटने पर, उस काटे हुये स्थान को धोकर ''माभैषीर्न०'' मन्त्र का जप करे। इससे सब प्रकारके विष दूर होंगे॥ १॥

स्नातकस्सविशन् वैणवं दण्डम् गनिद्ध्यात्तुरगोपायेति स्वस्त्ययनम् ॥ २ ॥

शयानस्समीषे निद्ध्यात् । उपद्रवरत्ता फलम् ॥ भा०-हनातक अपने कल्याण के लिये शयनकाल में "तुरगो पायण्" मन्त्र से बाँस की एक छड़ी या लाठी अपने पास रक्ले ॥२॥

इतस्त इति क्रिमिनन्तं देशमद्भिरभ्युक्षन् अपेत्। क्रिमिनाशः फलम्॥

भाव-जिस किसी ( घाव, जरूम, आदि ) स्थान में कीड़े पड़ गये हों उस स्थान को जल से घोकर "हतस्तेठ" इत्यादि चार मन्त्रों का जप करें तो इसो से पेट या किसी स्थान में कीड़े पड़े हों सब के सब नष्ट हो जायेंगे ॥ ३॥ पश्र्नां चेदपराह्ने सीतालोष्ट्याह्त्य तस्य प्रातः पांसुभिः प्रतिष्किरन् जपेत् ॥ ४ ॥

पश्र्नां क्रिमिनाशो भवेदिति यः कामयेत स सायाह काले सीतालोष्टं कृपिदेशे कृष्टमृत्तिकाम् वैहायसीं कुर्यात्। पूर्व एव मन्त्रः॥

आ०—यदि पशु आदि के कीड़ों को नाश करने की इच्छा हो तो किसी दिन दोपहर के पीछे हल जोतने से जो डेला निकला हो, उस डेला को लेकर खुले मैदान में अपर को मूला रक्खे, उसके दूसरे दिन उस डेले को फोड़कर उसकी थूलि, जहाँ कीड़े पड़े हों उस पर छींट २ कर उक्त चार मन्त्रों का जप करे, इसी से गो आदि पशु के सब प्रकार के कीड़े नष्ट हो जायेंगे॥ ४॥

मधुपर्क प्रतिगृहीध्यित्रद्महिममामिति प्रतितिष्ठम् जपेत्। ५ दातुः परिचारकैराहृतेषु विष्टरादिषु मधुपर्कार्थं गां ध्यायन् 'अर्ह्णा' इति जपेत् मन्त्रलिङ्गात्। तत उद्गप्रेषु दर्भेषु तिष्ठन् 'इद्मह-मिमाम्। इति जपेत्॥

भा०-मधुपर्क के दाता, नौकरों द्वारा विष्टरादि लाने पर मधुप-कीर्थ गो का ध्यान करता हुआ 'श्राह्मणा०' मन्त्र का जप करे उसके भीछे उत्तराध्र विछाये हुये कुशों पर खड़े होकर "इद्महमिमाम्" मन्त्र का जप करे।। १।।

अर्हयत्सु वा ॥ ६॥

मधुपर्कदानकाले वा ॥

भा०-या मधुपर्क होते समय अर्थात् आचार्यप्रभृति 'अर्हणीय' हयिक के उत्तर भागमें गौ बाँधकर रक्खे और "अर्हणायु वासता' मन्त्रसे उन अर्हणीय व्यक्ति के आने पर अनुमोदन करे। जिस स्थान में इन "अर्हणीय" व्यक्ति की पूजा करने के लिये शिष्य आदि की इच्छा हो और जिस समय अर्चना करनी सम्भव हो उसी स्थान में उसी समय अर्हणीय व्यक्ति खड़ा होकर "इदमहिममासं" मन्त्र पढ़े।।६।।

विष्टरपाद्यार्थ्याचमनीयमधुपर्काणामेकैकं त्रिवेदयनते ॥ ७॥

पद्मविंशतिदर्भमयौ कूचौ विष्टरौ । पादप्रचालनार्थमुद्कं पादम् पुष्पसंयुक्तमुद्दकं पादम् पुष्पसंयुक्तमुद्दकमध्यम् । त्राचमनार्थमुद्दकमाचमनीयम् । द्विमधुष्टतसंयुक्तो मधुपर्कः । तेषामेकैदमादाय तस्य तस्य प्रदानकाले त्रिस्तिर्व्याहाता विष्टरौ युगपत्। विष्टरौ, पाद्यं, त्राच्यं त्राचमनीयं, मधुपर्क इति वक्तव्ये मधुपर्काणामिति वहुवचनं पूजार्थं, दातुरभ्युद्यसूचनमेवपूजा ॥

( 40 8

भा- विष्टर, पाद्य, अर्ध्य और आचमनीय और मधुपर्क ये पाँच पदार्थों को देते समय इनमें से पक २ करके तीन २ वार निवे-दन करे।। ७॥

गांच॥८॥

गोदानकाले गामालभ्य गौगोंगौ रिति त्रिर्म्यात्। पृथक्सूत्रक-रणं गोस्तत्कालाहरणार्थम ॥

भा०-- ऋौर गौ को भी ॥ = ॥

उद्श्रं विष्टरमास्तीर्य या श्रोपधीरित्यध्यासीत ।९।

विष्टराविति त्रिरुक्ते तावादाय एकमुद्यप्रमास्तीर्य तरिमन् 'या स्रोपधीः' इति पूर्वेगासीत।।

पादयोर्द्वितीयया द्वौ चेत्।१०।

वच्यमार्थैर्मन्त्रेः पादौ प्रज्ञाल्य द्वितीयं विष्टरमुद्गप्रमधस्तात् पादयोः 'या श्रोपबीः' इति द्वितीयया स्तृशुयात् । चेच् अव्दात् पाद्योर-नित्यो विष्टरः । तदा विष्टर इति त्रिर्वचनम् ॥

भा०-- और ऋईणीय व्यक्ति विष्टर पाकर "या स्रोपधीः०" इन दो मंत्रों को पढ़कर उत्तराय कुशासन पर बैठ जावे। यदि पूजक दो विष्टर देवे तो पूर्वोक्त दो मंत्रों में से एक २ को पढ़कर इन दो विष्टरों को देवे॥ ६। १०॥

अपः पश्येत् यतो देवीरिति । ११ । पाद्यमिति त्रिरुक्ते तूष्णीमादाय मन्त्रेण पश्येत्॥ सन्यं पादमत्रसिञ्चेत् सन्यमिति । दक्षिणं दक्षिणमिति १२-१३

स्पच्टे ॥

उमौ शेषेण ॥ १४॥

'पूर्वमन्यम्' इति मन्त्रेणौभौ पादाववसिञ्चेत् ॥

भा०-तब एक विष्टर को आसन पर डाले और दूसरे को दोनों पैरों के नीचे रक्खे। पूजक से जल दिये जाने पर उस जल को "यतो देवी०" इस मन्त्र को पढ़ कर मान्य व्यक्ति उसको निरीच्चण करे। त्रानन्तर वह मान्य व्यक्ति थोड़ा जल देकर "सव्यं पादमवने निजे॰" मंत्र पढ़कर ऋपना वांया पैर धोवे । उसके पश्चात् "दिच्या पादमवनेनिजे॰ '' मंत्र को पढ़कर अपना दिहना पैर धोवे । वाकी जल से दोनों पैर एकत्र घोवे।। ११। १२। १३। १४॥

अन्नस्य राष्ट्रिरसीत्यघर्यं प्रतिगृह्णीयात ।१५। अर्घ्यमिति त्रिरुक्ते मन्त्रे प्रतिगृह्य तृष्णीमात्मानमभ्युद्धेत् ॥ यशोऽसीत्याचमनीयम् ।१६।

श्राचमनीयमित्युक्ते यशोऽसि' इति प्रतिगृद्धा तूष्णी पीत्वाऽऽचामेन् ॥
मा०-"श्रत्रस्य राष्ट्रिरसि०" मंत्रको पढ्कर मान्य व्यक्ति ऋईथिता का दिया श्रद्ध्य प्रहण करे। श्रनन्तर पूजक द्वारा श्राचमनीय जल
देने पर उस जलसे "यशोऽसि०" मंत्र पढ्कर श्राचमन विधि श्रतुसार
मान्य व्यक्ति श्राचमन करे। उसके पश्चात पूजक से मधुपर्क दिये जाने
पर मान्य व्यक्ति "यशसो०" मंत्र पढ्कर उसे प्रहण करे॥ १४। १६॥

यशमो यशोऽसीति मधुपर्कम् ।१७। मधुपर्के इति त्रिरुक्ते मन्त्रेण प्रतिगृह्य ॥ त्रिः पिनेचशसो पहसः श्रिया इति ।१८।

'यशसो भन्नोऽसि, यशो मिथ धेहि स्वाहा, महसो भन्नोसि, महो मिथ धेहि स्वाहा, श्री भन्नोऽसि, श्रियं मिथ धेहि स्वाहा। स्वाहा-कारान्तता सूत्रवचनात्॥

तूष्णीं चतुर्थम् ।१९।

पानम् ॥

भा०- तिये हुये उस मधुपर्क को ''यशसो०'' मंत्र को तीन वार पढ़कर उसके बाद चौथी वार बिना मंत्र पढ़े पान करे।। १७-६८-१९॥

भूयोऽपिपाय ब्राह्मणायोच्छिष्टं दद्यात् ।२०।

अन्ते सकुदाचमनम् । वाक्यशेषारिसद्धे द्वादिति ब्राह्मणालाभे अद्भिस्संत्रोद्यान्यस्मै दानार्थम् ॥

मा० — यदि मधुपर्क अधिक प्राप्त होजाय (जो ४ बार पीने पर भी शेष रहे) तो पांचवीं बार भी पीने और शेष किन्हीं श्रद्धावान ब्राह्मण को देने ॥ २०॥

गां वेदितामनुष्टत्रयेत मुश्च गामित्यमुष्य चेत्यईियतुर्नामंत्रयात्।।२१

'विष्णुशर्मणश्चोभयोः इतिवहातुर्नाम त्र्यात्॥

भा?—पीछे जब वह मान्य व्यक्ति मुंहे आदि धोकर स्वस्थ चित्त होवें, तब शख हाथ में लेकर नापित आकर उस मान्य व्यक्ति को तीन बार जतलावे "गौगौंगोंः" ऐसा ॥ तब नापित के उत्तर में मान्य व्यक्ति "मुख्य गां०" मंत्र और "तंजह्यमुष्य०" मन्त्रों को पढ़कर गौ झोड़ने की ऋाजा देवे। जिसमें यौ घास चरे ऋौर जल पीने ग़रशा एतमयज्ञे। २२

यज्ञन्यतिरिक्तेषु मधुपर्कप्रतिमह एवमुक्त एव नकारः॥ भा०—इसी प्रकार यज्ञ के अविरिक्त अन्य समय में भी मधुपर्क को स्वीकार करने का यही कस है॥ २२॥

कु ब्तेति यहे । २३

यज्ञवेतायां सु गवि निवेदिवायां कुरुतेति यज्ञज्ञानामास्यान् ज्ञूयात्।। स्थानार्य ऋत्विक् स्नातको रामा विवाद्यः विय इति ष्ट्रव्याः। दे

श्वाचार्यश्यस्य । ऋत्विय्यजमानस्य । स्तातक श्वासवनान्ते श्वाचार्यस्य । विवाद्यः कन्यादातुः विवाहकाले । श्वन्यदा श्वशुरः कन्या-प्रतिगृहीतुः । राजाऽभिषिकस्यवेषाम् । भियः प्रियस्य ॥

मतिसंवत्सरानहंयेत्।। २५ ॥

संवत्सरमतीत्यागतात्र ॥

पुनर्यज्ञविवाहयोश्र पुनर्यज्ञविवाहयोश्र ॥२६॥

अर्वागि संवत्सरादागतानर्द्येत् । द्विरुक्तिः पटलसमाप्त्यर्था ॥

नारायणस्य पुत्रेण मखनाटनिनासिना । रुद्रस्कन्देन सत्तेपद्वयाख्यातं गृह्यशासनम् ॥ इति रुद्रस्कन्दकृतायां खादिरगृह्यसूत्रवृत्तौ चतुर्थस्य

पटलस्य चतुर्थः खरडः पटसञ्च समाप्तः।

अ समाप्तं सपृत्तिकं खादिरं गृह्यस्त्रम् अ

भा० — यह में खूंटे में बँधी गौ को छोड़ने के लिये पूंछने पर
"करो०" अर्थात् उस "गौ को बध करो०" यही आदेश करे, परन्तु
विवाहादि गृद्धोक्त कमों में सदैव गौ को छोड़ने ही की व्यवस्था है।
छः व्यक्ति मान्य या अर्हणीय होते हैं जैसे — आचाय्यं, ऋत्विक्, रना-तक, राजा, वर और गुणवाद अतिथि। इनको कम से कम प्रति
वीसरे वर्ष के अन्त में पूजा करे। यह और विवाह के अवसरों पर
मान्य गण वर्ष के बीच में भी जब कभी आवश्यक हो पूजे जावें॥
२३। २४। २६॥

भा॰—इति रुद्रस्कन्द्ञत खादिरगृह्यसूत्र की वृत्ति में उद्यनारा-यण सिंह कृत भाषानुवाद सिंहत चौथे पटल का चौथा खरुड समाप्र हुआ ॥ ४ । ४ ॥ और खादिरगृह्यसूत्रवृत्ति का भाषानुवाद सिंहत प्रनथ भी समाप्त हुआ ॥



